भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक संकलन पत्रिका

युगबोध

बोधि
दिवस
विशेषांक

मार्च
१९७४

मूल्य : एक रु०

★

२१ मार्च ७४

बोधि दिवस पर

★

भंवरताल उद्यान, जबलपुर जहां २१ मार्च १९५३ को रात्रि २ बजे श्री रजनीश जी को भगवत् चैतन्य की अनुभूति हुई और उनका व्यक्ति खोकर वे स्वयं भगवत् चैतन्य के आलोकमय पुन्ज हो गए। तबसे वह अविरल आनन्द प्रेम की धारा कोटि कोटि मानवी हृदयों में अपने आध्यात्मिक आनन्द को आलोकित कर रही है।

ऐसे दिव्य आनन्द-प्रेम के पावन प्रणेता भगवान श्री रजनीश को उनके बोधि-दिवस पर नत- नत हो शत्-शत् वंदन।

अनन्तता में हम त्रसित मानव भी बोधि पा सकें, ऐसी प्रभु आशीष बरसे— यही शुभाकांक्षा।

—युक्रांद परिवार

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

युक्रांद

[illegible] – ५ अंक – १७ : १८

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
,, वार्षिक : १२-०० रु.

मार्च १९७४

मानसेवी संपादक मंडल :

- अरविन्दकुमार
- डॉ. उर्मिला, पी-एच.डी.
- 'आकुल' राजेन्द्र
  (साधु आनन्द 'आकुल')
- आलोक पाण्डे

☐ स्वामी धर्म सरस्वती, व्यवस्थापक

एकाग्र

मार्च

७४

★

जब जब फूल खिलें धरती पर
भोर की लाली जागे,
तब-तब मेरी बांसुरिया में,
बोध स्वरों का, हे प्रभु ! जागे

भगवत् चरणों में—
बोधि-दिवस पर शत्-शत् वंदन

अनुक्रमणिका

प्रवचन : संकलन

: ५ : कृष्ण और गीता
(अध्याय ११, छठवां प्रवचन) संकलन : अरविन्दकुमार

: ३५ : साधना त्रिवेणी (भगवान श्री की अंतरंग जीवन-साधना से)
संकलन : मा योग तारा, बम्बई

गीत : काव्य

: ३४ : प्रीत फिर भी अनगाई है
स्वामी योग प्रीतम, भीलवाड़ा

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्दकुमार, ७६०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिन्टर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

कृष्ण और गीता

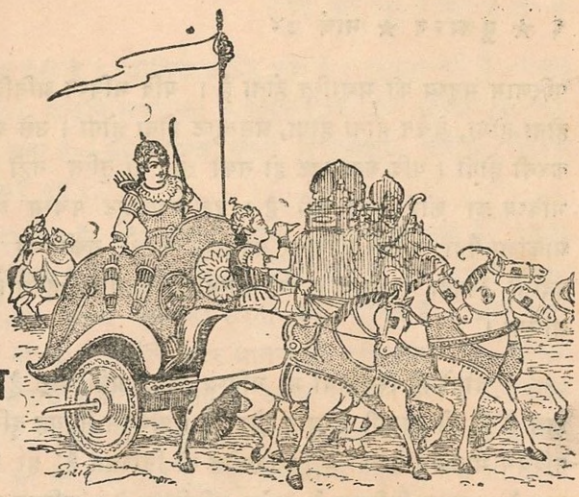

[गीता अध्याय ११ पर भगवान श्री रजनीश जी के ३ जनवरी ७३ से १४ जनवरी ७३ तक—क्रास मैदान, बंबई में १२ प्रवचन हुए हैं। उस क्रम का एक प्रवचन क्रमांक ६ वां, श्लोक २९ से ३१ के अंश को प्रस्तुत किया गया है।

युकांद प्रकाशन का ऐसा प्रयत्न है कि प्रति माह गीता के ११ वें अध्याय का एक-एक प्रवचन दिया जाय, अतः प्रेमी सुविज्ञ साधकों से निवेदन है कि 'युकांद' के इन बहुमूल्य अंकों को आप संजो कर रखेंगे तो—वर्ष के अन्त में आपके हाथ में गीता अध्याय ११ पूरा का पूरा हो सकेगा। —सं०]

एक मित्र ने पूछा है कि महाभारत युद्ध शुरू होने के पहले ही अर्जुन देखता है कि परमात्मा के विराट स्वरूप के अन्दर सब योद्धा मृत्यु-मुख में प्रविष्ट हो रहे हैं। तो क्या यह महायुद्ध उस क्षण एक अपरिहार्य नियति थी, जिसे संपन्न करने के लिए सब मजबूर थे।

जीवन को देखने के दो दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण है कि भविष्य अनिश्चित है और परिवर्तनीय भी। मनुष्य चाहे तो भविष्य वैसा ही हो सकता है, जैसा वह चाहता है। भविष्य पूर्व से निश्चित नहीं है। मनुष्य के हाथ में है कि भविष्य को निर्मित करे। यह जो दृष्टि है, इसका अपरिहार्य

परिणाम मनुष्य की अशान्ति होता है। यदि भविष्य अनिश्चित है तो अशांत होना होगा, बेचैन होना होगा, असन्तुष्ट होना होगा। उसे बदलने की कोशिश करनी होगी। यदि बदलाहट हो सकी तो भी तृप्ति नहीं मिलेगी, क्योंकि भविष्य का कोई अन्त नहीं है। एक बदलाहट पचास और बदलाहट की आकांक्षा पैदा करेगी। अगर बदलाहट न हो सकी तो उसे गहन पीड़ा, उदासी, विपदा घेर लेगी। मन संतप्त हो जाएगा, हारा हुआ, पराजित हो जाएगा।

दोनों ही स्थितियों में भविष्य अगर अनिश्चित है और आदमी के हाथ में है, तो आदमी परेशान होता है। पश्चिम ने यह दृष्टिकोण लिया है। पश्चिम मानकर चलता है कि अतीत तो निश्चित है, हो गया। वर्तमान हो रहा है। आधा निश्चित है, आधा अनिश्चित है। भविष्य पूरा अनिश्चित है, अभी बिल्कुल नहीं हुआ है। अगर भविष्य अनिश्चित है तो मुझे आज वर्तमान के क्षण को भविष्य के लिए अर्पित करना होगा। आज ही मुझे काम में लग जाना होगा कि भविष्य को मैं अपनी आकांक्षा के अनुकूल बना लूं।

इसके दो परिणाम होंगे। एक तो वर्तमान का क्षण मेरे हाथ से चूक जाएगा। उसे मैं भविष्य के लिए समर्पित कर दूंगा। मैं आज नहीं जी सकूंगा। मैं आशा रखूंगा कि कल जब मेरे मनोनुकूल स्थिति बनेगी, तब मैं जीऊंगा। आज को मैं भविष्य के लिए कुर्बान कर दूंगा—पहली बात। और कल की चिन्ता मुझे आज सताएगी, खींचेगी, परेशान करेगी।

पश्चिम ने इसका प्रयोग किया है और परिणाम में पश्चिम को गहन अशांति उपलब्ध हुई है। लेकिन भौतिक अर्थों में पश्चिम अपने जीवन को नियत करने में बहुत दूर तक सफल भी हुआ है। यह बड़ी उलझन की बात है, इसे थोड़ा गौर से समझ लेना चाहिए।

पश्चिम अपनी भौतिक स्थिति को मनुष्य के अनुकूल बनाने में बहुत दूर तक सफल हो गया है। तो एक अर्थ में तो उनकी जो धारणा है सत्य सिद्ध हो गई है कि वर्तमान को अगर हम भविष्य के लिए अर्पित करें, तो भविष्य को मन के अनुकूल कुछ दूरी तक निश्चित ही निर्मित किया जा सकता है। इस मामले में पश्चिम की सफलता साफ है। बीमारी कम हुई

है। लोगों की उम्र बढ़ी है। भौतिक समृद्धि बढ़ी है। साधन बढ़े हैं। वैभव की सुविधा बढ़ी है। उन्होंने अपने मन के अनुकूल जो कल भविष्य था और आज वर्तमान हो गया है—उसे निर्मित करने में सफलता पाई है। लेकिन दूसरे अर्थों में वे हार गए।

यह सब हो गया है और आदमी इतना अशान्त हो गया है, इतना भीतर विक्षिप्त हो गया है कि अब विचार होने लगा है कि इतनी कीमत पर आदमी को खोकर इतनी व्यवस्था करनी क्या उचित है? और अगर आदमी की भीतर की सारी शान्ति और आनन्द ही खो जाता हो, तो हम बाहर कितनी ही समृद्धि अर्जित कर लेते हैं, उसका प्रयोजन क्या है? क्योंकि अन्ततः सारी समृद्धि मनुष्य के लिए है, मनुष्य समृद्धि के लिए नहीं है और अन्ततः बाहर हम जो भी बना लेते हैं, वह आदमी के लिए है कि जो उसके काम आ सके। लेकिन अगर आदमी ही खो जाता हो बनाने में, तो यह बहुत मंहगा सौदा है और मूढ़तापूर्ण भी।

पश्चिम इस बात में सफल हुआ है कि भविष्य को आदमी प्रभावित कर सकता है लेकिन प्रभावित करने में आदमी नष्ट हो जाता है।

पूर्व ने दूसरा दृष्टिकोण लिया है। पूर्व कहता है—भविष्य को आदमी निश्चित, निर्मित कर ही नहीं सकता। भविष्य नियत है—अपरिहार्य है। जो होना होगा, वह होगा। इसका दुष्परिणाम हुआ कि बाहर के जगत में हम गरीब हैं, दीन हैं, बीमार हैं, बीमार हैं, परेशान हैं। हम कोई भौतिक समृद्धि अर्जित नहीं कर पाए। यह परिणाम हुआ, क्योंकि जब भविष्य को हमने छोड़ ही दिया नियति पर, तो हम भविष्य के लिए कोई श्रम करें, यह बात ही समाप्त हो गई।

लेकिन इसका एक गहरा लाभ भी हुआ। और वह लाभ यह हुआ कि भविष्य की चिन्ता से जो विक्षिप्तता मनुष्य में पैदा हो सकती थी, उससे हम बच सके। और कुछ लोग सब कुछ भविष्य पर छोड़कर परम आनन्द के क्षण को भी उपलब्ध हो सके। अभी पश्चिम को बुद्ध पैदा करने में देर है। अभी पश्चिम को कृष्ण पैदा करने में देर है। अभी पश्चिम चेतना की उन ऊंचाइयों को छूने में असमर्थ हैं, जो हमने छुईं। उसका आधार सिर्फ एक था कि हमने कहा भविष्य तो निश्चित है—जो होना है, होगा। इसका परिणाम हुआ।

अगर भविष्य में जो होना है, होगा, तो मुझे भविष्य के लिए चिन्तित और परेशान होने का कोई भी कारण नहीं है। दूसरा परिणाम यह हुआ कि अगर भविष्य निश्चित है तो वर्तमान को भविष्य पर कुर्बान करना नासमझी है। तो मैं अभी जीऊं, यहीं इस क्षण को पूरा जीऊं।

मजे की बात यह है कि वर्तमान ही हमारे हाथ होता है, भविष्य नहीं। आज ही हमारे हाथ में होता है, कल हमारे हाथ में होता नहीं। और अगर मन की ऐसी आदत हो जाय कि आज को कल पर कुर्बान कर दूं, तो कल जब आएगा, वह भी आज होकर आएगा। उसे भी मैं आने वाले कल पर कुर्बान करूंगा। तो जीवन निरन्तर पोस्टपोन होता जायगा—जी न सकेंगे हम कभी। कल तो कभी आता नहीं है। आता तो सदा आज है। मिलता तो सदा वर्तमान है। भविष्य तो कभी मिलता नहीं। आपकी भविष्य से कभी मुलाकात हुई है! कभी नहीं हुई है। कभी होगी भी नहीं। मुलाकात तो वर्तमान से होती है।

लेकिन अगर मन की यह आदत हो जाय कि वर्तमान को भविष्य के लिए नष्ट करना है, तो यह आदत आपका पीछा करेगी। मरते दम तक आप जी नहीं पाएंगे, सिर्फ जीने का सपना देखेंगे—सोचेंगे कि जीऊंगा।

तो पश्चिम ने जीवन के साधन जुटा लिये। लेकिन जो जी सकता है, वह अनुपस्थित हो गया। हम जीवन के साधन न जुटा पाए। लेकिन जो जी सकता है, यह उपस्थित रहा है। और दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।

सत्य क्या है? दोनों ही सत्य हैं। भविष्य निर्मित किया जा सकता है, अगर मनुष्य अपने को कीमत में चुकाने को राजी है। भाग्य बदला जा सकता है, अगर आप अपने को मिटाने को राजी हैं। अगर आप अपने को बचाने की इच्छा रखते हैं और अपने होने का आनन्द लेना चाहते हैं, तो फिर भविष्य नहीं बदला जा सकता—फिर भविष्य नियति है।

पश्चिम का विचारशील व्यक्तित्व आज अनुभव कर रहा है कि शायद पूर्व के लोग जो कहते रहे हैं, वही ठीक है। और यह उचित भी है। अनुभव के बाद ही यह बात अनुभव की जा सकती है। अब पश्चिम को अनुभव हो रहा है कि उन्होंने जो पाया वह ठीक, लेकिन जो गंवाया? हम भी परेशान हैं, क्योंकि हमने भी कुछ गंवाया है। चुनाव जब भी करना होता है तो कुछ गंवाना भी होता है। हम भी आज परेशान हैं। इसलिए एक बड़ी अनूठी

स्थिति पैदा हो गई। पूर्व, पश्चिम की तरफ हाथ फैलाए खड़ा है—भिक्षापात्र लिए। और पश्चिम, पूर्व की तरफ भिक्षापात्र लिए खड़ा है।

पश्चिम पूछ रहा है पूर्व से मन की शान्ति के उपाय—ध्यान, योग, तन्त्र, जप, पूजा, प्रार्थना, क्या है? और पूर्व, पश्चिम से मांग रहा है—रोटी, कपड़ा, अन्न, भोजन, मकान, इंजीनियर, डाक्टर। दोनों भिक्षा मांग रहे हैं। यह होने वाला था।

लेकिन, पश्चिम का अनुभव नया है अभी। पश्चिम पहली दफा समृद्ध हुआ है और समृद्ध होकर उसने भीतर की दरिद्रता जानी। और समृद्ध होकर उसे पता चला कि कितनी ही समृद्धि हो जाय, भीतर की दरिद्रता उससे घटती नहीं, बल्कि बढ़ जाती है।

पूर्व बहुत बार समृद्ध हो चुका है। पूर्व बहुत बार यह अनुभव कर चुका है कि सब मिल जाय, किन्तु जब तक आत्मा न मिले, तब तक सब मिलना व्यर्थ है। आज जहां पश्चिम खड़ा है, पूर्व बहुत बार इस जगह खड़ा हो चुका है। पूर्व की कथा बहुत पुरानी है।

गीता जिस क्षण घटित हुई होगी, उस क्षण पूर्व करीब-करीब उसी विज्ञान के उस शिखर पर था, जहां आज पश्चिम है। महाभारत में जिन अस्त्र-शस्त्रों की चर्चा है—उन अस्त्र-शस्त्रों को हम आज पहली दफे समझ सकते हैं कि वे क्या रहे होंगे, क्योंकि हमें आज हाइड्रोजन, और एटम-बम की प्रक्रिया पता है। आज हम पहली दफा समझ सकते हैं कि महाभारत में जो घटित हुआ होगा, वह क्या था और आदमी ने क्या खोज लिया था। आज हमने फिर पश्चिम में उसे खोज लिया है। उस समृद्धि के शिखर पर खड़ा होकर महाभारत घटित हुआ। जब भी समृद्धि बहुत बढ़ जाती है तो युद्ध अनिवार्य हो जाता है। उसके कारण हैं। क्योंकि जितना ही आदमी बाहर समृद्ध हो जाता है, भीतर दरिद्र हो जाता है। और जितना ही भीतर दरिद्र हो जाता है, घृणा, वैमनस्य, क्रोध उसमें बढ़ जाते हैं--प्रेम, करुणा, दया, ममता कम हो जाती है। प्रेम और करुणा और दया और ममता तो भीतर की समृद्धि के लक्षण हैं। जब भीतर आदमी दरिद्र होता है तो हिंसा बढ़ जाती है। जब भी आदमी भीतर दरिद्र होता है तो हिंसा बढ़ेगी ही। हिंसा का अन्तिम परिणाम युद्ध होगा, विनाश होगा। समृद्धि शिखर पर थी,

आदमी भीतर दरिद्र था। वह आदमी जो भीतर दरिद्र था, हिंसा के लिए तत्पर था।

आज पश्चिम पूरी तरह उसी हालत में है, जहां महाभारत के समय पूर्व था। और कुछ आश्चर्य न होगा कि पश्चिम को तीसरे महायुद्ध से न बचाया जा सके। कोई आश्चर्य न होगा। बहुत संभावना तो यह है कि पश्चिम विनाश को करके ही रुकेगा। आदमी भीतर दरिद्र है; दीन है, हिंसा, क्रोध से भरा है; विनाश से भरा है।

अभी रोम में एक पागल आदमी ने कुछ दिन पहले, आपने खबर पढ़ी होगी, जीसस की एक मूर्ति को जाकर तोड़ दिया। अब जीसस की मूर्ति को तोड़ देने का कोई भी प्रयोजन नहीं है। और जब उस आदमी से पूछा गया कि क्यों उसे तोड़ दिया, तो उसने कहा कि मुझे तोड़ने में बहुत आनन्द आया। अगर मेरी जान भी ले ली जाय अब इसके बदले में, तो मुझे कोई चिन्ता नहीं है। जीसस की मूर्ति तोड़ने में, मूर्ति तोड़ने में क्या आनन्द मिला होगा ? लेकिन उस मूर्ति को लाखों लोग प्रेम करते थे। वह अपने तरह की अनूठी मूर्ति थी। उस मूर्ति को तोड़कर फिर करोड़ों लोगों के हृदय को तोड़ने की कोशिश की है। यह कहता है, इसे आनन्द मिला।

अगर आज हम पश्चिम में देखें तो विनाश का आनन्द बढ़ता जाता है। विनाश रुचिकर, आनन्दपूर्ण मालूम हो रहा है। सैकड़ों हत्याएं हो रहीं सिर्फ इसलिए कि हत्या करने में लोगों को मजा आ रहा है। सैकड़ों लोग आत्मघात कर रहे हैं, सिर्फ इसलिए कि मिटाने का एक रस, एक थ्रिल—तोड़ देने की, समाप्त कर देने की।

सार्त्र ने कहा है, आदमी जन्म लेने के लिए तो स्वतन्त्र नहीं है, लेकिन अपने को मार डालने के लिए तो स्वतन्त्र है। तो जब कोई अपने को मारता है तो स्वतन्त्रता का अनुभव होता है। पैदा आप हो गए, आपसे कोई पूछता नहीं है—आपकी कोई राय नहीं ली जाती। आप पाते हैं कि आप पैदा हो गए बिना आपकी मरजी के। यह परतन्त्रता है—निश्चित ही। स्वतन्त्रता कहां है फिर ?

सार्त्र को मानने वाला वर्ग कहता है कि सुसाइड, आत्महत्या में ही स्वतन्त्रता मालूम पड़ती है, बाकी कुछ भी करो, परतंत्रता मालूम पड़ती है।

एक चीज कम से कम आदमी कर सकता है—अपने को मिटा सकता है। और मिटाकर अनुभव कर सकता है कि मैं स्वतन्त्र हूं। अगर विध्वंस स्वतन्त्रता बन जाय और आत्मघात स्वतन्त्रता बन जाय, तो सोचना पड़ेगा कि आदमी भीतर गहन रूप से रुग्ण और बीमार हो गया है—विक्षिप्त और पागल हो गया है।

आज वियतनाम में जो हो रहा है, बिल्कुल अकारण है। कोई भी कारण नहीं सूझता कि वियतनाम में क्यों आदमी की हत्या जारी रखी जाय, न अमरीका को विजय से कोई प्रयोजन है कि वियतनाम की विजय कोई अमरीका में चार चांद जोड़ देगी। वियतनाम का कोई मूल्य भी नहीं है अमरीका के लिए। पर यह युद्ध क्यों जारी है? विध्वंस अपने आप में सुख दे रहा है—अकारण। अब कोई आवश्यकता नहीं कि कोई कारण हो।

जैसे, एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है। हम उससे पूछें, क्यों बना रहा है तो वह कहता है, बनाने में आनन्द है। एक चित्रकार चित्र बनाता है। हम उससे पूछें, क्यों तो वह कहता है, निर्मित करने में आनन्द है। एक मां अपने बेटे को बड़ा होते देख कर खुश होती है, हम पूछें, क्यों? तो सृजन, एक जन्म विकसित हो रहा है उसके हाथों में, वह आनंदित है।

ठीक ऐसे ही विध्वंस का भी आनन्द है—रुग्ण, बीमार। और जब आदमी की आत्मा दरिद्र होती है तो विध्वंस का आनन्द होता है। महाभारत ऐसे ही घटित नहीं हुआ। वह घटित हुआ समृद्धि के शिखर पर जब भीतर आत्मा बिल्कुल दरिद्र हो गयी। और जब हिंसा में रस रह गया और तोड़ने-फोड़ने, मिटा डालने की उत्सुकता इतनी बढ़ गई कि दुर्योधन राजी न हुआ—एक इन्च जमीन देने को। चाहे सारी मनुष्य जाति नष्ट हो जाय इसके लिए राजी था, लेकिन एक इन्च जमीन देने को राजी नहीं था।

यह जो भाव दशा है, यह भाव दशा पश्चिम में फिर खड़ी हो गई है। और पश्चिम किसी भी दिन फूट सकता है, विस्फोट हो सकता है और सारी तैयारी है विस्फोट की। किसी भी क्षण जरा-सी चिंगारी और फिर पश्चिम को मृत्यु के मुंह से रोकना मुश्किल हो जाएगा। ठीक ऐसी ही घड़ी भारत में महाभारत के समय आ गई थी। और ऐसी घड़ी पूर्व में बहुत बार

आ चुकी है। यह दुनिया नयी नहीं है। और हम जमीन पर पहली दफा सभ्य नहीं हुए हैं।

अभी जितनी नवीनतम खोजें हैं—पुरातत्व की, वे आदमी के इतिहास को पीछे हटाती जाती हैं। अभी सिर्फ पचास साल पहले पश्चिम के इतिहासविद् मानते थे कि जीसस से चार हजार साल पहले दुनिया का निर्माण हुआ। तो कुल इतिहास छः हजार साल का था। हमें मानने में सदा कठिनाई रही कि छः हजार साल का कुल इतिहास। हमारे पास किताबें हैं, वेद हैं, जो पश्चिम भी स्वीकार करता है कि कम से कम छः हजार साल पुराने तो हैं ही। हमारे लेखे से तो वे कोई नब्बे हजार साल पुराने हैं। और हमारा लेखा रोज-रोज सही होता जा रहा है। संभव है कि वे और भी पुराने हों।

मोहनजोदड़ो, हड़प्पा की खुदाई ने बताया है कि सात हजार साल पुरानी सभ्यता थी। लेकिन ये पुरानी बातें हो गईं। अभी जो नवीन खोजें हैं, वे सभ्यता को पचास हजार साल पीछे ले जाएंगी। और अभी नवीनतम कुछ ऐसी खोजें हाथ में लगी हैं, जिन्होंने कि सारे इतिहास की धारणा को अस्त-व्यस्त कर दिया।

आस्ट्रेलिया में कोई सत्तर हजार साल पुराने पत्थर पर खुदे हुए दो चित्र मिले हैं। वे चित्र ऐसे हैं जैसे कि जब हमारा अन्तरिक्ष यात्री चन्द्र पर पहुंचता है, तो जिस तरह के कपड़े पहने होता है, जिस तरह की ड्रेस पहने होता है, जिस तरह का नकाब लगाए होता है। सत्तर हजार साल पुराना पत्थर पर खुदा हुआ चित्र अन्तरिक्ष यात्री का। जब तक हमारे पास अन्तरिक्ष यात्री नहीं था तब तक हम समझ भी नहीं सकते थे कि यह चित्र किस चीज का है। अब हम समझ सकते हैं। अब बड़ी कठिनाई है। यह सत्तर हजार साल पुराना चित्र जिन लोगों ने बनाया उनके पास अन्तरिक्ष यात्री जैसी कोई चीज रही होगी, अन्यथा इसके बनाने का कोई उपाय नहीं।

अगर सत्तर हजार साल पहले आदमी अन्तरिक्ष की यात्रा कर सकता था तो हमें सोचना होगा कि हम पहली दफा चांद पर पहुंच गए हैं—इस भ्रम में न पड़ें। और हमें यह भी सोचना होगा कि हम पहली दफा इन सारी समृद्धियों को पा लिए हैं—इस भ्रम में न पड़ें।

तिब्बत के एक पर्वत पर सत्तर रिकार्ड मिले हैं—पत्थर के। जैसा ग्रामोफोन रिकार्ड होता है। वे पत्थर के हैं। और ठीक ग्रामोफोन रिकार्ड पर जैसे ग्रूव्स होते हैं, वैसे ग्रूव्स उन पत्थर पर हैं, बीच में छेद है जैसा कि ग्रामोफोन रिकार्ड पर होता है। और अभी वैज्ञानिक उन पर अनुसंधान करते हैं तो वे कहते हैं उन पत्थर के रिकार्ड से ठीक वैसी ही विद्युत तरंगें उठती हैं जैसे ग्रामोफोन के रिकार्ड से उठती हैं। फिर एकाध नहीं सत्तर। और अंदाजन कोई बीस हजार से चालीस हजार साल पुराने हैं। तो क्या कभी आज से बीस हजार साल पहले किसी सभ्यता ने कोई उपाय खोज लिया था—पत्थर पर भी रिकार्ड करने का। और अगर खोज लिया हो तो फिर हमें भ्रम छोड़ देना चाहिए कि हम पहली बार सभ्य हुए हैं।

पूर्व बहुत बार सभ्य हो चुका है और पूर्व बहुत बार अनुभव ले चुका है समृद्धि का। और हर समृद्धि के अनुभव के बाद उसे पता चला है कि आदमी चीजें तो कमा लेता है, अपने को खो देता है। मकान तो बन जाता है, धन तो इकट्ठा हो जाता है, आत्मा विनष्ट हो जाती है। इस कारण पूर्व ने यह विकल्प चुना कि भविष्य की चिन्ता छोड़ी जा सके तो ही आत्मा निर्मित होती है। भविष्य का तनाव ही पीड़ा है। और भविष्य की चिन्ता छोड़ने का एक ही उपाय है और वह उपाय यह है कि अगर आप इस बात को मानने को राजी हो जाएं कि भविष्य अपरिहार्य है, नियत—जो होना है, होगा। 'जो होना है, होगा'—इसके लिए अगर राजी हो जाएं, तो फिर आपको करने को कुछ नहीं बचता है; और जब करने को ही नहीं बचता तो बेचैन होने का कोई कारण नहीं है। करने को कुछ है, तो फिर बेचैनी है। करने के पहले भी बेचैनी रहेगी और करने के बाद भी बेचैनी रहेगी; क्योंकि करने के बाद भी लगेगा कि अगर जरा ऐसा कर लिया होता तो परिणाम दूसरा हो सकता था। अगर मैंने ऐसा कर लिया होता तो, ऐसा हो सकता था। तो आप पीछे भी परेशान रहेंगे कि अगर ऐसा न करके जरा-सा फर्क किया होता, तो आज जिन्दगी दूसरी होती। और भविष्य के लिए भी परेशान रहेंगे कि मैं क्या करूं। फिर एक आखिरी परिणाम, जब आप असफल हो जाते हैं। और आदमी कुछ ऐसा है कि वह सफल कभी होता ही नहीं। इसे थोड़ा समझ लें।

आदमी के मन का ढांचा ऐसा है कि वह सदा अन्त में असफल ही होता है। इसका कारण यह है कि जितने आप सफल हो जाते हैं, वह तो

व्यर्थ हो जाती है बात; और नए लक्ष्य निर्मित हो जाते हैं। एक आदमी को दस हजार रुपये कमाने हैं, वह कमा लेता है। कोई दस हजार रुपये कमाने में मुश्किल मामला नहीं है—कमा लेता है। सफल हो गया, लेकिन उसे पता ही नहीं कि सफलता की खुशी वह कभी नहीं मना पाता; क्योंकि जब तक दस हजार इकट्ठे कर पाता है तब तक उसकी आकांक्षा लाख हो जाती है। जब दस हजार पा लेता है तो खुशी से नाचता नहीं है। केवल दुख से पीड़ित होता है कि अभी यात्रा और बाकी है, उसे लाख कमाने हैं। ऐसा भी नहीं है कि लाख न कमा ले, वह भी हो जाएगा। लेकिन जिस मन ने दस हजार से लाख पर यात्रा पहुंचा दी थी, वही मन लाख से दस लाख पर यात्रा पहुंचा देगा। हर आदमी असफल मरता है। कोई आदमी सफल नहीं मर सकता। क्योंकि जो भी आप पा लेते हैं, आपकी वासना उससे आगे चली जाती है। मरते वक्त भी आपकी वासना अधूरी ही रहेगी—वह पूरी नहीं हो सकती।

एंड्रोकार्नेजियम अमरीका का सबसे बड़ा धनपति मरा। तो अपने पीछे दस अरब रुपये छोड़ गया। लेकिन मरने के दो दिन पहले का उसका वक्तव्य है कि मैं एक असफल आदमी हूं; क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपये छोड़ने के थे। केवल दस छोड़े जा रहा हूं—दस अरब रुपये !

आप कितना पा लेंगे, इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। आपका मन उससे ज्यादा की मांग करेगा। मन सदा आपसे आगे चला जाता है। आप होते हैं वर्तमान में, मन भविष्य में चला जाता है। यह नियति की धारणा भविष्य का दरवाजा बन्द करने की है। मैं कुछ कर ही नहीं सकता हूं। तो भविष्य में यात्रा करने का कोई उपाय नहीं है। दस रुपये मिले, कि दस लाख, कि कुछ भी न मिले, मैं भिखारी रह जाऊं। जो भी होगा, वह होगा। उसमें मेरा कोई हाथ नहीं है।

ऐसा आदमी कभी असफल नहीं होता। इसे थोड़ा समझ लें। ऐसे आदमी को आप असफल नहीं कह सकते; क्योंकि असफलता को भी वह स्वीकार कर लेगा कि यही होना था। आप सफल नहीं हो सकते। आप सफलता को भी असफलता कर देंगे; क्योंकि जो हो गया वह कुछ भी नहीं है, जो होना चाहिए वह सदा आगे है। नियति की धारणा वाला आदमी असफल नहीं किया जा सकता। आप कुछ भी करें वह सफल है। और जो

सफल हैं वह शान्त हैं, और जो असफल हैं वह अशान्त हैं। और जो सफल है वह प्रसन्न है, और जो असफल है वह उदास है। और जो सफल है, और एक घटना घटती है।

अब आप असफल होते चले जाते हैं अपनी वासना की यात्रा में, तो सिवाय आपके और कोई जिम्मेवार नहीं होता असफलता के लिए—आप ही जिम्मेवार होते हैं। तो गहन पीड़ा आदमी पर टूट पड़ती है। अकेला आदमी इस बड़ी दुनिया में लड़ता है, इस बड़ी दुनिया से। टूट जाता है, उसके कंधे पर बोझ पहाड़ों का इकट्ठा हो जाता है। और आखिर में सिवाय स्वयं को निन्दा करने के और कोई उपाय नहीं है।

लेकिन नियति की धारणा वाला व्यक्ति अपने कंधे पर कोई भार लेता नहीं। वह कहता है, परमात्मा की मर्जी। जीतूं तो वह, हारूं तो वह, सदा जिम्मेवार वही है। वह जिम्मेवार नहीं है। और जो रिस्पांसिबिलिटी, जो दायित्व का बोझ और भार है—व्यक्ति के ऊपर, वह उसके ऊपर नहीं है। आप उस आदमी की तरह हैं जो ट्रेन में चल रहा हो और अपना सब सामान सिर पर रखे हो। वह नियतिवादी वह आदमी है जिसने सब सामान ट्रेन में रख दिया और खुद भी सामान के ऊपर बैठा हुआ है। वह कहता है ट्रेन चल रही है मैं क्यों बोझ उठाऊं। आपको पक्का नहीं कि ट्रेन चला रही है। आप सोच रहे हैं कि आप ही चला रहे हैं सारा और जरा ही भूल-चूक हुई, तो आप ही जिम्मेदार हैं। कुछ भी गड़बड़ हुई तो आप ही फंस जाएंगे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कौन-सी धारणा ठीक है। ख्याल रखना, मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि ये दो धारणाएं हैं। इसे थोड़ा ख्याल में ले लेना।

आम तौर से लोग जल्दी करते हैं कि कौन-सी धारणा ठीक है। अगर नियतिवाद ठीक है तो हम मान लें और अगर ठीक नहीं है तो हम कोशिश में लग जाएंगे, यह मैं कुछ भी नहीं कह रहा हूं। मेरा वक्तव्य बहुत अलग है। मैं ये दोनों धारणाएं आपको समझा रहा हूं। इसमें से फिर जो आपको चुननी हो आप चुन सकते हैं। फिर उसका परिणाम आपके साथ होगा। ये दोनों धारणाएं ठीक हैं। अगर आपको अशान्त होना है, विक्षिप्त होना है, धन इकट्ठा करना है, महल बनाने हैं, तो आप नियति को कभी मत मानें। आपको शांत होना है, आनंदित होना है, और झोपड़ा भी महल जैसा मालूम पड़े, ऐसी आपकी कामना हो और न कुछ हो पास में तो भी

आप सम्राट मालूम पड़ें—ऐसी आपकी कामना हो, तो नियति आपके लिए चुनना उचित है। ये दोनों रास्ते हैं। एक पागलखाने में ले जाता है। ले ही जाएगा।

इसलिए अब सारी दुनिया एक बड़ा पागलखाना है। अब किसी को पागलखाना वगैरह भेजना ठीक नहीं है। अब तो जो ठीक हों उनके चारों तरफ घेरा लगाकर उनको बचाने का उपाय करना चाहिए। क्योंकि बाकी तो बड़ा पागलखाना है जिसमें, कोई अगर आज आप मनस्विद् से पूछें तो वह कहता है चार में से तीन आदमियों का मस्तिष्क गड़बड़ है। चार में से तीन का! तो जमीन करीब-करीब तीन चौथाई पागलखाना हो गई है। और जिस एक को भी वह कह रहा है कि इसका मस्तिष्क ठीक है, कितनी देर ये तीन उसको ठीक रहने देंगे। ये तीन उसके पीछे पड़े हैं—उसको भी डांवाडौल कर रहे हैं।

आपको पता नहीं चलता कि आपका मस्तिष्क विक्षिप्त है, क्योंकि आपके चारों तरफ पागलों की भीड़ है, उन्हीं जैसा आपका मस्तिष्क है। इसलिए कोई अड़चन नहीं होती। लेकिन आप जरा बैठकर एक कागज पर अपने दिमाग में जो चलता है, उसे लिखें और फिर किसी को दिखाएं। यह मत बताएं कि मैंने लिखा है, बता भी नहीं सकेंगे कि मैंने लिखा है। ऐसा बताएं कि किसी का पत्र आया है। वह आदमी कहेगा किसी पागल ने लिखा है। तब आपको पता चल जाएगा कि आपके दिमाग में जो चलता है, ईमानदारी से दस मिनट एक कोने बैठ जाएं, और लिख डालें जो भी चलता हो। उसमें आप कुछ फर्क मत करना, जो भी चलता हो। दस मिनट का एक टुकड़ा लिख लें और अपने निकटतम मित्रों को बताएं, जो आपको प्रेम करते हैं। और उनसे पूछें यह किसी का पत्र आया है, थोड़ा समझ लें। आप एक आदमी न खोज सकेंगे पूरी जमीन पर, जो आपसे कहे कि यह आदमी ने, किसी ने, लिखा है जिसका दिमाग ठीक है। जो भी मिलेंगे वे कहेंगे किसी पागल ने लिखा है। क्या चल रहा है आपके भीतर? कोई संगति है वहां? एक अराजकता है। आप जैसे एक भीड़ हैं भीतर, जिसमें कुछ भी हो रहा हो। किसी तरह अपने को संभाले हुए बाहर प्रगट नहीं होने देते। वह भी मौके-बे-मौके निकल ही जाता है। कोई जरा जोर से धक्का मार दे, वह जो भीतर चल रहा है, बाहर निकल आता है। कोई

जरा गाली दे दे तो उसने आपके भीतर छेद कर दिया, उसमें से आपके भीतर का पागलपन बहकर बाहर निकल आएगा।

क्रोध क्या है ? अस्थायी पागलपन है। जरा देर के लिए आप पागल हो गए। फिर संभाल लेते हैं अपने को। बड़ी अच्छी बात है कि फिर संभाल लेते हैं। लेकिन वह घड़ी भर में जो प्रगट होता है, उसे आपने कभी ख्याल किया है कि क्या होता है ? यह जो विक्षिप्तता है, यह इस दृष्टि का परिणाम है कि जो कुछ किया जा सकता है, वह हम कर सकते हैं। हम जिन्दगी को बदल सकते हैं। हम जिंदगी जैसी बनाना चाहते हैं, वैसी जिंदगी बन सकती है। कोई नियति नहीं है। भविष्य मुक्त है और हमारे हाथों में है। मैं नहीं कहता यह गलत है, यह हो सकता है। पश्चिम ने करके देखा है। हमने भी बहुत बार करके देखा है। लेकिन इसका परिणाम यह होता है कि भविष्य तो हमारे हाथ में थोड़ा-बहुत चलने लगता है, लेकिन हम बिल्कुल पटरी से उतर जाते हैं।

भविष्य को चलाने में आदमी अस्त-व्यस्त हो जाता है। यह बहुत बार के अनुभव के बाद भारत ने यह निर्णय लिया है कि भविष्य को छोड़ दो परमात्मा पर। वह अपरिहार्य है, इनएवीटेबिल है—जो होना है, वह होकर रहेगा। आप बीच में कुछ भी नहीं हैं। इसका चुकता परिणाम यह होता है कि आप तत्क्षण मुक्त हो गये भविष्य से। अब कोई चिन्ता न रही। सुख आएगा कि दुख आएगा, अच्छा होगा कि बुरा होगा, बचेंगे कि नहीं बचेंगे, अब आपके हाथ में कोई बात नहीं है। आप वर्तमान में जी सकते हैं, अभी और यहीं।

बहुत से शिक्षक हैं, कृष्णमूर्ति हैं, जो निरंतर कहते हैं—वर्तमान में जियो। लेकिन आदमी वर्तमान में जी नहीं सकता जब तक उसको यह ख्याल है कि भविष्य बनाया जा सकता है। कैसे जी सकता है ! इसलिए शिक्षा ठीक होकर भी अधूरी है। कैसे जी सकता है जब तक उसे पता है कि मैं चाहूं तो कल और कुछ हो सकता है; और अगर मैं कुछ न करूं तो कुछ और होगा।

कल बदला जा सकता है, यह मेरे आज को तो परेशान करेगा ही। अगर कल बदला ही नहीं जा सकता और कल ऐसा ही है जैसे कोई उपन्यास

में पढ़ रहा हूं, जिसकी कथा लिखी हुई है, या कोई फिल्म देख रहा हूं। तो मैं हाल में बैठकर कुछ भी करूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला, फिर यह जो घटना घटने वाली है, यह घटकर ही रहेगी। फिल्म तो सिर्फ उघड़ रही है—सब नियत है। वह अगर शादी होनी है पात्र की तो हो ही जाएगी। पीछे बैंड-बाजा बजेगा, शहनाई बज जाएगी। नहीं होनी है, तो नहीं होगी।

और जो भी होना है, वह एक अर्थ में हो चुका है। फिल्म पर सिर्फ मुझे दिखाई पड़ना है। और मैं हाल में बैठकर करवटें बदल रहा हूं कि कोई उपाय करूं कि यह जो अभिनेता प्रेम कर रहा है, इसकी शादी हो जाय, तो मैं नाहक परेशान हो रहा हूं। कोई परेशान नहीं होता, लेकिन कुछ लोग परेशान फिल्म में भी होते हैं। कम से कम थोड़ी देर को तो भूल ही जाते हैं। फिल्म में भी सोचने लगते हैं कि ऐसा हो जाय तो अच्छा। ऐसा न हो तो बेचैनी होती है।

भारतीय दृष्टि यह है, और गीता की दृष्टि है यह, और बहुत लम्बे अनुभव के बाद इस नतीजे पर भारत पहुंचा कि भविष्य सिर्फ अनफोल्ड हो रहा है। मैं यह नहीं कह रहा हूं, यह सही है या गलत है। यह कुछ भी नहीं कह रहा हूं। यह सिर्फ एक डिवाइस, एक उपाय है।

एक उपाय है, अगर आपको वस्तुएं इकट्ठी करनी हैं तो भविष्य नियत नहीं है, मानकर चलें। आत्मा खो जाएगी। एक उपाय है कि भविष्य नियत है, चिन्ता न करें। आप अपनी आत्मा को सरलता से उपलब्ध कर सकेंगे।

इसलिए अर्जुन ने जो देखा है कृष्ण में, अभी योद्धा मरे नहीं हैं, समझिए अभी भीष्मपितामह जीवित हैं। अभी द्रोणाचार्य पूरी तरह जीवित हैं, अभी हारे भी नहीं हैं, अभी मिटे भी नहीं हैं। अभी तो युद्ध शुरू नहीं हुआ है। और उसने देखा, कृष्ण के दांतों में दबे हुए, पिसते हुए, मरते हुए, समाप्त होते हुए; जैसे फिल्म में उसने आगे झांक लिया, या उपन्यास के कुछ पन्ने उसने एकदम से उलट दिये और पीछे का निष्कर्ष पढ़ लिया। भविष्य उसे दिखाई पड़ा।

कृष्ण उसे यही कहना चाहते थे कि तू नाहक परेशान हो रहा है कि ऐसा करूं कि वैसा करूं—जो होना है, वह होगा। तेरी परेशानी अकारण

है, असंगत है। कृष्ण उसे यही समझा रहे थे कि जो होना है, वह हो ही चुका है। तू चिन्ता छोड़। कहानी लिखी जा चुकी है, नाटक का अन्त तय हो चुका है। तू सिर्फ पात्र है। तू नाटक का रचयिता नहीं है। तू लेखक नहीं है। यह जो कथा है, वह तुझसे लिखे जाने वाली नहीं, तू लिखने वाला नहीं है। लिखने वाला लिख चुका है, नतीजा तय हो चुका है। तुझे सिर्फ काम पूरा करना है। यह ऐसे ही जैसे एक रामायण खेल रहे हैं लोग—रामलीला कर रहे हैं। अब उसमें कोई उपाय नहीं है।

एक गांव में ऐसा हो गया। एक गांव में एक ही आदमी हर बार रावण बनता था। रावण जैसा था शक्ल सूरत से। तो हर बार जब रामलीला होती, वह रावण बनता। और गांव की एक सुन्दर स्त्री थी, वह सीता बनती थी। ऐसा हुआ धीरे-धीरे साथ-साथ काम करते-करते सच में ही रावण को सीता से प्रेम हो गया, उस लड़की से। और उसे बड़ा कष्ट होता था कि हर बार प्रेम तो उसका है और हर बार शादी राम के साथ होती है। कष्ट स्वाभाविक है।

एक बार ऐसा हुआ कि जब स्वयंवर रचा और रावण भी बैठा। तो कथा ऐसी है कि रावण के दूत आए और उन्होंने खबर दी कि लंका में आग लगी है, इसलिए वह लंका चला गया। उसी बीच राम ने धनुष तोड़ दिया, शादी हो गई। दूत आकर चिल्लाने लगे कि रावण तेरे राज्य में आग लगी है। रावण ने कहा, लगी रहने दे इस बार तो शादी करके ही जाएंगे। बहुत बार देख चुका, लगी रहने दे। और उसने आव देखा न ताव, उठाकर शिवजी का धनुष तोड़कर दो टुकड़े कर दिये। जनक घबड़ा गए। सीता भी घबड़ाई। राम भी परेशान हुए। वशिष्ट भी सोचने लगे होंगे कि अब क्या होगा। यह सारी कथा खराब हो गई। वह तो जनक कुशल आदमी था, गांव का बूढ़ा आदमी था। उसने कहा, भृत्यों यह तुम मेरे बच्चों के खेलने का धनुष उठा लाए! शिवजी का धनुष लाओ। परदा गिराकर रावण को अलग करके दूसरा आदमी रावण बनाना पड़ा।

कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि वह जो होने वाला है, वह तेरे हाथ में नहीं है। तू नाहक चिन्ता ले रहा है। वह लिखा जा चुका है। वह हो चुका है। वह नियत है। वह बंधा हुआ है। तू निश्चित हो जा। और तू

अपना पात्र ऐसे कर लें जैसे एक अभिनय में कर रहा है। हो जाती है भूल। यह अभिनेता भूल गया कि मैं सिर्फ अभिनय कर रहा हूं, मुसीबत में पड़ा।

ऐसा मैंने सुना कि अभी निक्सन के इलेक्शन में गया हुआ अमरीका में। निक्सन के चुनाव में एक अभिनेता हालीवुड का निक्सन का प्रचार करने गया। एक मंच पर खड़े होकर व्याख्यान दे रहा है। अभिनेता का व्याख्यान, वह तैयार करके लाया था जैसे फिल्म में देता है। वैसे सब तैयार था। सब हाथ का हिलाना, सिर का हिलाना सब तैयार था। जोर से भाषण दे रहा था। तभी एक आदमी, जो निक्सन के खिलाफ था, बीच में खड़े होकर गड़बड़ करने लगा। यह अभिनेता को भी जोश आ गया। उससे कहा, क्या गड़बड़ करते हो, अगर हो ताकत तो आ जाओ। दोनों कूद पड़े, कुश्मत-कुश्ती हो गई। उस आदमी ने दो चार हाथ जोर से जड़ दिये। अभिनेता ने कहा—अरे! यह क्या। तुमको अभिनय नहीं करने आता, तो इस तरह कहीं मारा जाता है। वह असली हाथ मारने लगा। वह बेचारा अभिनेता था। यह भूल ही गया कि यह सभा असली है। और यहां मारपीट असली हो जाएगी। वह समझा कि कोई फिल्म का दृश्य है तो यह सब हो रहा है, ठीक है।

आदमी के भूलने की संभावना है। हम भी जो असली नहीं हैं, उसे असली मान लेते हैं। जो असली है उसे नकली मान लेते हैं। तब जीवन में बड़ी असुविधा हो जाती है। तब जीवन में बड़ी उलझन हो जाती है।

कृष्ण का सूत्र ही यही है अर्जुन को कि तू बीच में मत आ। जो हो रहा है, उसे हो जाने दे। तू बाधा मत डाल। और तू निर्णय मत ले कि मैं क्या करूं। तुझसे कोई पूछ ही नहीं रहा है कि तू क्या करेगा। तू निमित्त मात्र हो। अगर तू पूरा नहीं करेगा तो कोई और पूरा करेगा।

एक बहुत अदभुत घटना मुझे याद आती है। बंगाल में एक बहुत अनूठे संन्यासी हुए युक्तेश्वर गिरि। वे योगानन्द के गुरू थे। योगानन्द ने पश्चिम में फिर बहुत ख्याति पाई। गिरि अदभुत आदमी थे। ऐसा हुआ एक दिन कि गिरि का एक शिष्य गांव में गया। किसी शैतान आदमी ने उसको परेशान किया, पत्थर मारा, मारपीट भी कर दी। वह यह सोचकर महर्षि को क्या कहना, चुपचाप वापस लौट आया। और फिर उसने सोचा कि जो होने वाला है, वह हुआ होगा; मैं क्यों अकारण बीच में आऊं। तब

उसने अपने को संभाल लिया। सिर पर चोट आ गयी थी। खून भी थोड़ा निकल आया था। खरोंच भी लग गयी थी। लेकिन यह मानकर कि जो जो होना है, होगा; जो होना था, वह हो गया है। वह भूल ही गया है।

जब वह वापस लौटा आश्रम कहीं से भिक्षा मांगकर तो वह भूल ही चुका था कि रास्ते में क्या हुआ। गिरि ने देखा कि उसके चेहरे पर चोट है, तो उन्होंने पूछा, यह चोट कहां लगी। तो एकदम से ख्याल ही नहीं आया उसे कि क्या हुआ है। फिर उसे ख्याल आया। उसने कहा, आपने अच्छी याद दिलाई। रास्ते में एक आदमी ने मुझे मारा। तो गिरि ने पूछा, लेकिन तू भूल गया इतनी जल्दी। तो उसने कहा कि मैंने सोचा कि जो होना था, वह हो गया। और जो होना ही था, वह हो गया; अब उसको याद भी क्या रखना।

अतीत भी निश्चितता से भर जाता है, भविष्य भी। लेकिन एक और बड़ी बात इस घटना में है आगे। गिरि ने उसको कहा, लेकिन तूने अपने को रोका तो नहीं था। जब वह तुझे मार रहा था, तूने क्या किया। तो उसने कहा कि एक क्षण को मुझे ख्याल आया था कि एक मैं भी लगा दूं। फिर मैंने अपने को रोका कि जो रहा है, होने दो। तो गिरि ने कहा कि फिर तूने ठीक नहीं किया—फिर तूने थोड़ा रोका—जो हो रहा था, वह पूरा नहीं होने दिया। तूने थोड़ी बाधा डाली।

उस आदमी के कर्म में तूने बाधा डाली, गिरि ने कहा। उसने कहा, मैंने बाधा डाली, मैंने उसको मारा नहीं और तो मैंने कुछ किया नहीं। क्या आप कहते हैं, मुझे मारना था। गिरि ने कहा, मैं यह कुछ नहीं कहता हूं। मैं कहता हूं कि जो होना था, वह होने देना था। और तू वापस जा। क्योंकि तू तो निमित्त था, कोई और उसको मार रहा होगा।

और बड़े मजे की बात है कि वह संन्यासी वापस गया। वह आदमी बाजार में पिट रहा था। लौटकर वह गिरि के पैरों में पड़ गया। उसने कहा कि यह क्या मामला है। गिरि ने कहा कि जो तू नहीं कर पाया, वह कोई और कर रहा है। तू क्या सोचता है, क्या तेरे बिना नाटक बन्द हो जाएगा। तू निमित था। बड़ी अजीब बात है यह। और सामान्य नीति के नियमों के बड़े पार चली जाती है।

कृष्ण अर्जुन को यही समझा रहे हैं। वे यह कह रहे हैं—जो होता है, तू होने दे। तू मत कह कि ऐसा करूं, वैसा करूं संन्यासी हो जाऊं, छोड़ जाऊं। कृष्ण उसको रोक नहीं रहे संन्यास लेने से। क्योंकि अगर संन्यास होना ही होगा तो कोई नहीं रोक सकता, वह हो जाएगा। इस बात को ठीक से समझ लें। अगर संन्यास ही घटित होने को हो अर्जुन के लिए, तो कृष्ण रोकने वाले नहीं हैं। वे सिर्फ इतना कह रहे हैं कि तू चेष्टा करके कुछ मत कर। तू निश्चेष्ट भाव से, निमित्त मात्र हो जा। और जो होता है, वह हो जाने दे। अगर युद्ध हो तो ठीक है और अगर तू भाग जाय और संन्यास ले ले, तो वह भी ठीक है। तू बीच में मत आ। तू सृष्टा मत बन। तू केवल निमित्त हो।

ऐसी अगर दृष्टि हो तो आप कैसे अशान्त हो सकेंगे। ऐसी अगर दृष्टि हो तो कौन आपको परेशान कर सकेगा। ऐसी अगर दृष्टि हो तो फिर चिन्ता आपके लिए नहीं है। और जो परेशान नहीं, चिन्तित नहीं, बेचैन नहीं उसके भीतर वे शान्ति के वर्तुल बन जाते हैं, जिनसे भीतर यात्रा होती है और परम स्रोत तक पहुंचना हो जाता है।

एक और प्रश्न:

परम सत्ता को, परम चैतन्य और परम प्रज्ञा कहा गया है। लेकिन उसमें घटित सृजन, फिर विनाश, फिर सृजन, फिर विनाश के वर्तुल को देखकर बड़ा अजीब-सा लगता है। क्या आप समझा सकते हैं कि इस वर्तुल के पीछे कोई कारण, कोई अर्थ, कोई मीनिंग, कोई सार्थकता है?

इसको थोड़ा ख्याल में लेना जरूरी होगा, क्योंकि गीता को समझना बहुत आसान हो जाएगा। न केवल गीता को, बल्कि भारत की पूरी खोज को समझना आसान हो जाएगा। यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या है कारण इन सबका कि आदमी का जन्म हो, मृत्यु हो...सृष्टि बनाओ, प्रलय करो! इधर ब्रह्मा बनाएं, उधर विष्णु संभालें, वहां शंकर विनष्ट करें! यह सब क्या उपद्रव है! और इसका क्या प्रयोजन है! यह बनने मिटाने का जो वर्तुल है, अगर यह गाड़ी के चाक की तरह घूमता ही रहता है, तो यह जा कहां रही है गाड़ी? यह जो चाक घूम रहा है, यह कहां ले जा रहा है? इसकी निष्पत्ति क्या होगी? अन्ततः क्या है लक्ष्य—इस सारे

विराट् आयोजन का ? इसके पीछे क्या राज है ? यह सवाल गहरा है। और आदमी निरन्तर पूछता रहा है कि क्या है प्रयोजन इस जीवन का। इस विराट् आयोजन में निमित्त क्या है ? क्यों यह सब हो रहा है ?

इसके दो उत्तर हैं। और जो उत्तर भारत ने दिया है वह बड़ा अद्-भुत है। एक उत्तर तो कोई प्रयोजन खोजना है। जैसे कुछ धर्म कहते हैं कि आत्मज्ञान को पाना इसका प्रयोजन है। जैसा जैन कहते हैं कि इस सारी यात्रा के पीछे, इस सारे भव-जाल के पीछे आत्मसिद्धि, आत्मज्ञान, कैवल्य को पाना लक्ष्य है। या जैसे ईसाइयत कहती है कि परमात्मा का अनुभव—उसके राज्य में प्रवेश, किंगडम आफ गाड—उसके साथ उसके सान्निध्य में रहना, उसकी खोज, इसका प्रयोजन है।

लेकिन ये बातें बहुत गहरी जाती नहीं, क्योंकि पूछा जा सकता है कि अगर सिद्धि और आत्मज्ञान पाना ही इसका प्रयोजन है, तो इतनी बाधाएं खड़ी करने की क्या जरूरत है—सिद्धि और आत्मज्ञान में। और आत्मा तो मिली ही हुई है। तो इतनी लम्बी यात्रा, इतना कष्ट का जाल, इतना उपद्रव क्यों है ? यह सीधा-साधा हो जाय। अगर कोई परमात्मा यही चाहता है कि हम आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाएं, तो वह हमें आशीर्वाद दे दे, हम आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाएं। वह प्रसाद बांट दे, हम आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाएं। उसके चाहने से घटना घट जाएगी। यह इतना जाल किसलिए, जन्मों-जन्मों का इतना कष्ट, यह किस लिए। अगर यह परमात्मा ही कर रहा है, तो परमात्मा बहुत विक्षिप्त मालूम पड़ता है। यही काम करना है कि सभी लोग सिद्ध हो जाएं, तो वह सभी लोगों को सिद्ध इसी क्षण कर सकता है।

इसलिए जैनों ने परमात्मा को नहीं माना। क्योंकि अगर परमात्मा को मानते तो बड़ी कठिनाई खड़ी होती। वह क्यों नहीं अभी तक लोगों को मुक्त कर देता है। तो जैनों ने कहा है कि संसार में कोई परमात्मा नहीं जो तुम्हें मुक्त कर सके, तुम्हीं को मुक्त होना है। मगर क्यों ? यह अमुक्ति क्यों है ? और आदमी अमुक्त क्यों हुआ है ? इसका कोई उत्तर जैनों के पास नहीं है। वे कहते हैं—अनादि है। मगर क्यों ? वे कहते हैं कि मुक्त होना है और मुक्त होने की सम्भावना है—मुक्त लोग हो गए हैं। लेकिन आदमी की आत्मा बन्धन में ही क्यों पड़ी है ? इसका कोई उत्तर नहीं। वे कहते हैं

निगोध से पड़ी है, अनन्त काल से पड़ी है। लेकिन क्यों पड़ी है ? कितने ही काल से पड़ी हो, आदमी अमुक्त क्यों है ? इसका कोई उत्तर नहीं है।

अगर ईश्वर के राज्य में पहुंचना ही लक्ष्य हो, तो ईश्वर ने हमें पटका क्यों है ? वह हमें पहले से ही राज्य में बसा सकता था। अगर ईसाइयत कहती है कि चूंकि आदमी ने बगावत की ईश्वर के खिलाफ, आदम ने आज्ञा नहीं मानी और आदमी को संसार में भटकाना पड़ा। क्योंकि बड़ी हैरानी की बात लगती है कि आदम अवज्ञा कर सका, इसका मतलब यह कि ईश्वर की ताकत आदम की ताकत से कम है। आदम बगावत कर सका—इसका मतलब यह होता है कि आदम जो है, वह ईश्वर से भी ज्यादा ताकत रखता है, बगावत कर सकता है, स्वतन्त्र हो सकता है। और बड़ी कठिनाई है कि आदम में यह बगावत का ख्याल किसने डाला ?

क्योंकि ईसाइयत कहती है कि सभी कुछ का निर्माता ईश्वर है, तो इस आदमी को वह बगावत का ख्याल किसने डाला ? वे कहते हैं, शैतान ने। लेकिन शैतान को कौन बनाता है ? बड़ी मुसीबत है—धर्मों के लिये, जो उत्तर देते हैं, उससे और मुसीबत में पड़ते हैं। शैतान को भी ईश्वर ने बनाया। ईवलिश जो है, वह भी ईश्वर का बनाया हुआ है और उसी ने तो भड़काया है। तो ईश्वर को क्या इतना भी पता नहीं था कि ईवलिश को मैं बनाऊंगा, तो यह आदमी को भड़काएगा। और आदमी भड़केगा तो पतित होगा। पतित होगा तो संसार में जाएगा। और फिर ईसा मसीह को भेजो, साधु-संन्यासियों को भेजो, अवतारों को भेजो, मुक्त हो जाओ। यह सब उपद्रव ! क्या उसे पता नहीं था इतना भी ? क्या भविष्य उसे भी अज्ञात है ? अगर भविष्य अज्ञात है तो वह भी आदमी जैसा अज्ञानी है। और अगर भविष्य उसे ज्ञात है, तो सारी जिम्मेदारी उसकी है। फिर यह उपद्रव क्यों है ?

नहीं, हिन्दुओं के पास एक अनूठा उत्तर है, जो जमीन पर किसी ने नहीं खोजा—वह दूसरा उत्तर है। वे कहते हैं, इस जगत का कोई प्रयोजन नहीं है—यह लीला है। इसे थोड़ा समझ लें। वे कहते हैं, इसका कोई प्रयोजन नहीं, यह सिर्फ खेल है—जस्ट ए प्ले। यह बड़ा दूसरा उत्तर है, क्योंकि खेल में और काम में एक फर्क है। काम में प्रयोजन होता है, खेल में प्रयोजन नहीं होता।

आप सुबह मरीन ड्राइव से जा रहे हैं—घूमने। अगर कोई आपसे पूछे कि कहां जा रहे हैं, तो आप कहते हैं, सिर्फ घूमने जा रहे हैं। आप कोई लक्ष्य नहीं बता सकते कि कहां जा रहे हैं। आदमी से पूछें, क्या दिमाग खराब है, क्यों नाहक चल रहे हैं, जब कहीं जा ही नहीं रहे हैं। तो आप कहते हैं, मैं घूम रहा हूं। घूमने का क्या मतलब है, जा कहां रहे हैं? आप कहेंगे, जा कहीं भी नहीं रहा हूं, मैं घूमने का आनन्द ले रहा हूं। बस यह जो पैरों का उठना और यह हवा की टक्कर और यह गहरी श्वास और यह होने का जो मजा है, बस यह ले रहा हूं—मैं कहीं जा नहीं रहा हूं। यह कहीं जाने के लिए निकला भी नहीं है, सिर्फ आनन्दित हो रहा है। यह घूमना एक खेल है। इसकी कोई मंजिल नहीं, कोई प्रयोजन नहीं।

फिर उसी रास्ते से आप दोपहर दफ्तर जा रहे हैं। रास्ता वही है, पैर वही हैं, आप वही हैं। लेकिन सब कुछ बदल गया। अब आप कहीं जा रहे हैं। दफ्तर जा रहे हैं। कहीं पहुंचना है, कोई लक्ष्य है। यह काम है। फर्क आप अनुभव कर लेंगे। सुबह आप उसी रास्ते पर उन्हीं पैरों से, वहीं आदमी घूमता है। और घूमने में एक आनन्द होता है। और वही आदमी थोड़ी देर बाद, उसी रास्ते, उन्हीं पैरों से दफ्तर जाता है और दफ्तर जाने में कोई भी आनन्द नहीं होता। सिर्फ एक जबर्दस्ती, एक बोझ पूरा करना है। लक्ष्य है, उसे पूरा करना है।

सुबह इसी आदमी की पुलक दूसरी थी। इसकी आंखों की रौनक और थी। इसके चेहरे पर हंसी और थी। यही दफ्तर जब जा रहा है तब वह सब रौनक खो गई, वह हंसी खो गई। रास्ता वही है, आदमी वही, पैर वही, हवाएं वही, सब कुछ वही; फर्क क्यों पड़ गया। इस आदमी के मन में एक लक्ष्य है अब। लक्ष्य से तनाव पैदा होता है। सुबह कोई लक्ष्य नहीं था, बिना लक्ष्य के कोई तनाव नहीं होता।

अब इस आदमी के मन में एक भविष्य है—कहीं पहुंचना है। भविष्य से तनाव पैदा होता है। सुबह कहीं पहुंचना नहीं था। चाहे बाएं गए, चाहे दाएं गए; चाहे इस तरफ गए, चाहे उस तरफ गए; चाहे यहां रुके, चाहे वहां रुके; कोई फर्क नहीं पड़ता था—कोई मंजिल न थी, चलना ही मंजिल थी। खेल बच्चे खेलते हैं। क्या कर रहे हैं वे? हमें लगता भी

है, बड़ों को कभी-कभी, कि क्या बेकार के खेल में पड़े हो। हमें लगता है कि खेल में भी कोई कार, कोई काम होना चाहिए, बेकार है।

हम तो अगर खेल भी खेलते हैं, बड़े अगर खेल भी खेलते हैं, तो खेल नही खेल पाते हैं—अगर वे ताश खेल रहे हैं तो थोड़े बहुत पैसे लगा लेंगे। क्योंकि पैसे लगाने से प्रयोजन आ जाता है, नहीं तो बेकार है। बेकार ताश खींच रहे हैं, फेंक रहे हैं, उठा रहे हैं, क्या मतलब ! कुछ दांव लगा लो तो रस आ जाता है। क्यों ? क्योंकि तब खेल नहीं रह जाता, काम हो जाता है। तब उसमें उसे कुछ मिलेगा। तब खेल के बाहर कोई चीज पाने के लिए है, तो काम हो गई। जुआ काम है, खेल नहीं है। खेल का मतलब ही इतना होता है कि बाहर कोई लक्ष्य नहीं है—अपने में ही रसपूर्ण है।

भारत की गहरी खोज है कि परमात्मा के लिए सृष्टि कोई काम नहीं है, कोई परपज नहीं, कोई प्रयोजन नहीं है, खेल है; इसलिए हमने इसे लीला कहा है। लीला जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। लीला जैसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है, क्योंकि लीला का अर्थ यह होता है कि सारी सृष्टि एक निष्प्रयोजन खेल है—इसमें कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन परमात्मा आनन्दित हो रहा है—बस। जैसे सागर में लहरें उठ रही हैं, वृक्षों में फूल लग रहे हैं, आकाश में तारे चल रहे हैं, सुबह सूरज ऊग रहा है, सांझ तारों से आकाश भर जाता है—यह सब उसके होने का आनन्द है। वह आनन्दित है।

यह होना, इसमें कुछ पाना नहीं है उसे कि कल कोई सर्टिफिकेट उसे मिलेगा कि खूब अच्छा चलाया नाटक; कि कोई उसकी पीठ थपथपाएगा कि शाबाश ! उसके अलावा कोई नहीं है कि कोई ताली बजाएगा, अखबार में खबर छापेगा कि बड़ी अच्छी व्यवस्था रही तुम्हारी। कोई नहीं है उसके अलावा। वह अकेला है।

कभी आपने अकेले ताश के पत्ते खेले। अगर खेले हों तो थोड़ी देर के लिए ईश्वर होने का मजा आ सकता है। कुछ लोग ट्रेन में खेलते रहते हैं अकेले। कोई नहीं होता, तो दोनों बाजियां चल देते हैं, फिर उस तरफ से जवाब देते हैं, फिर इस तरफ से जवाब देते हैं। उसमें भी पूरा मजा आ जाता है—हार-जीत का। लीला का अर्थ है—वही है इस तरफ, वही है

उस तरफ, दोनों बाजियां उसकी। हारेगा भी तो भी वही, जीतेगा तो भी वही। फिर भी मजा ले रहा है। 'हाइड एण्ड सीक', खुद को छिपा रहा है और खुद ही खोज रहा है।

कोई प्रयोजन नहीं है। हमें बहुत घबड़ाहट लगेगी। इसलिए भारत की यह धारणा दुनिया में बहुत लोगों तक प्रभाव नहीं छोड़ती—भारतीय के मन में भी प्रभाव नहीं छोड़ती। क्योंकि लगता है सब बेकार है। हमारे मन में भी कुछ मतलब तो निकलना चाहिए। इतनी दौड़-धूप, इतने उपद्रव, जन्म-जन्म की यात्रा, और मतलब कुछ भी नहीं। यह भी थोड़ा सोच लेने जैसा है।

अगर हम जिन्दगी को एक काम समझते हैं, तो हमारी जिन्दगी में एक बोझ होगा। और अगर जिन्दगी को हम खेल समझते हैं तो जिन्दगी निर्बोझ हो जाएगी। धार्मिक आदमी वह है, जिसके लिए सभी कुछ खेल हो गया। और अधार्मिक आदमी वह है जिसके लिए खेल भी खेल नहीं है। उसमें भी जब काम निकलता हो कुछ, तो ही। धार्मिक आदमी वह है जिसके लिए सब लीला हो गई। उसे कोई अड़चन नहीं है कि ऐसा क्यों हो रहा है, ऐसा क्यों नहीं हो रहा। यह बुरा आदमी क्यों है, यह भला आदमी क्यों है। निष्प्रयोजन लीला की दृष्टि से वह जो बुरे में छिपा है वह भी वही है, वह जो भले में छिपा है वह भी वही है। रावण में भी वही है, राम में भी वही है। दोनों तरफ से दांव चल रहा है। और वह अकेला है। अस्तित्व अकेला है। इस अस्तित्व के बाहर कोई लक्ष्य नहीं है।

इसलिए जो आदमी अपने जीवन में लक्ष्य छोड़ दे और वर्तमान के जीवन में ऐसा जीने लगे जैसे खेल रहा है, वह आदमी यहीं और अभी परमात्मा का अनुभव करने में सफल हो जाता है। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि परमात्मा पाने को भी एक धन्धा बना लेते हैं। एक धन्धा, उसको भी ऐसा व्यवस्था से चलते हैं पाने के लिए कि छोड़ेंगे नहीं, पाकर ही रहेंगे। और उसको भी भविष्य में रखते हैं कि कहीं पाकर रहेंगे। और यह करेंगे, वह करेंगे, फिर ऐसा करेंगे, उपवास करेंगे, तप करेंगे, तपश्चर्या करेंगे—पूरा धन्धा, इतना गोरख-धंधा।

आपको पता है यह शब्द आया है—गोरखनाथ से। वह महान तांत्रिक गोरखनाथ हुआ। और उसकी साधना पद्धति जो गोरख की थी,

पक्की धन्धे की थी। साधना पद्धतियां यह थीं, यह क्रिया करो, यह कर्म करो, और यह करो, वह करो। इतना उपद्रव था उसमें कि धीरे-धीरे उसकी साधना को लोग गोरख-धंधा ही कहने लगे। वह बड़ा उपद्रव है। आप अपने साधु-संन्यासियों के पास जाएं, सब गोरखधंधे में लगे हैं। अलग-अलग गोरखधन्धे हैं। अलग-अलग ढंग के हैं। लेकिन बड़े धन्धे में लगे हैं।

लेकिन ईश्वर को पा पाता है वही आदमी, जो धन्धे में ही नहीं होता। जो धन्धे में भी हो तो भी खेल ही समझता है। दुकान पर बैठा है तो भी एक नाटक का एक पात्र है। हमने यहां तक हिम्मत की है कि अगर वह आदमी हत्यारा है, किसी की हत्या कर रहा है या चोर है और चोरी कर रहा है, अगर वहां भी वह आदमी सिर्फ अपने को नाटक का एक पात्र समझ रहा हो, तो चोरी भी नहीं छूती और हत्या भी नहीं छूती। मगर बड़ा कठिन है। बड़ा कठिन है अपने को निमित्त मात्र मान लेना कि जो हो रहा है, होने देना है हम कुछ न करेंगे—अपनी बुद्धि को बीच में न डालेंगे, अपने निर्णय न लेंगे—बहे चले जाएंगे इस प्रवाह में। ऐसा जो प्रयोजनहीन होकर जीता है बच्चों की भांति, वही है सन्त। वह क्या कर रहा है, इस पर निर्भर नहीं है। उसके करने में जो दृष्टि है, वह घूमने वाले की है, पहुंचने वाले की नहीं है। मौज ले रहा है। जो हो रहा है, उसमें भी मौज ले रहा है।

अब हम सूत्र को लें :

अर्जुन कह रहा है, "अथवा जैसे पतंग मोह के वश होकर नष्ट होने के लिए प्रज्ज्वलित अग्नि में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे सब लोग भी अपने नाश के लिए आपके मुखों में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश कर रहे हैं।"

जैसे दिया जल रहा हो और पतंगा चक्कर लगाता है दिये के और पास आता चला जाता है। उसके पंख भी जलने लगते हैं तो भी हटता नहीं, और पास आता चला जाता है। लपट उसे छूने लगती है तो और पास आता चला जाता है। अन्त में वह लपट में छलांग लगाकर जल जाता है। और ऐसा भी नहीं कि एक पतंगे को जलते देखकर दूसरे पतंगे कुछ समझ लें। वे भी चक्कर लगाते हैं और पतंगे और भी निकट आते जाते हैं प्रकाश के। जहां भी प्रकाश हो, पतंगे प्रकाश को खोजते हैं।

अर्जुन कह रहा है, मैं ऐसे ही देख रहा हूं इन सारे लोगों को आपके इस मृत्यु रूपी मुंह में जाते हुए। वे सब भाग रहे हैं अति वेग से। और एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं कि कौन पहले पहुंच जाय। बड़ा वेग है। और जा कहां रहे हैं! आपके मुंह में जा रहे हैं जहां मौत के सिवाय और कुछ भी नहीं है। यह क्या हो रहा है! यह सब महाशूरवीर, महायोद्धा, बुद्धिमान, पंडित, ज्ञानी ये सब मृत्यु की तरफ जा रहे हैं। और इतनी साज-सजावट से जा रहे हैं कि ऐसा नहीं लगता कि इनको पता हो कि ये मृत्यु की तरफ जा रहे हैं—इतनी शान से जा रहे हैं। शोभा यात्रा बना रखी है इन्होंने अपनी गति को और जा रहे हैं, देखता हूं आपके मुंह में जहां मृत्यु घटित होगी। और आप उन सम्पूर्ण लोगों को प्रज्ज्वलित मुखों द्वारा ग्रसन करते हुए सब ओर से चाट रहे हैं। और आप हैं एक कि आपकी अग्नि-लपटें सब तरफ से छू रही हैं लोगों को। और उनको लीले चली जा रही हैं।

"हे विष्णु! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपायमान कर रहा है। सब तप रहे हैं, जल रहे हैं, भस्म हुए जा रहे हैं। हे भगवन्! कृपा करके मेरे प्रति कहिए कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं?"

मानने का मन नहीं होता उसका कि यह आप जो रूप दिखला रहे हैं, यह सच में आपका ही रूप है। सोचता है, कोई भ्रम पैदा कर रहे होंगे। सोचता है कोई प्रतीक, सोचता है मुझे कोई धोखा दे रहे होंगे, डरवा रहे होंगे। सोचता है मेरी परीक्षा ले रहे होंगे। यह मानने का मन नहीं करता है कि यह आप ही हैं। तो वह कहता है, यह उग्र रूप वाला कौन है? यह आप नहीं मालूम पड़ते।

"देवों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार होवे। आप प्रसन्न होइए।"

वह घबड़ा भी रहा है। बेचैन हो रहा है और कह रहा है कि आप प्रसन्न होइए। आदि स्वरूप आपको मैं तत्त्व से जानना चाहता हूं, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को मैं नहीं जानता। आप अपनी प्रवृत्तियां सिकोड़ लें, कि आप लोगों की मृत्यु बनते हैं, मुझे प्रयोजन नहीं; कि आप लोगों को लील जाते हैं, मुझे मतलब नहीं है; कि आप लोगों को बनाते हैं, मुझे मतलब नहीं। आपकी प्रवृत्ति को हटा लें। आप क्या करते हैं, इससे मुझे प्रयोजन

नहीं। आप क्या हैं केन्द्र में, इसेन्स में, सार में, तत्त्व में, वही मैं जानना चाहता हूं।

हम सब भी परमात्मा को जानना चाहते हैं और उसकी प्रवृत्ति से बचना चाहते हैं। यह सारा संसार उसकी प्रवृत्ति है। यह सारा संसार उसका खेल है। हम इससे बचना चाहते हैं और उसे जानना चाहते हैं। वही अर्जुन कह रहा है। अर्जुन की आकांक्षा हमारी आकांक्षा है। हम भी कहते हैं, संसार से छुड़ाओ प्रभु अपने पास बुला लो; जैसे कि संसार में वह पास नहीं है। हम कहते हैं, हटाओ इस भवसागर से, इस बन्धन से और अपने गले लगा लो; जैसे इस बन्धन में उसने गले नहीं लगाया। हम कहते हैं, कब छूटेगी यह पत्नी, कब छूटेगा यह पति—यह छुटकारा कब होगा। हे प्रभु! पास बुलाओ; जैसे कि इस पति में और पत्नी में वही मौजूद नहीं है।

बुद्ध वापस आए जब वे बुद्ध हो गए। और उनकी पत्नी ने एक सवाल पूछा है। पता नहीं पूछा या नहीं। रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है जिसमें पूछा है। रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है। और रवीन्द्रनाथ बड़े आलोचक थे बुद्ध के, गहरे आलोचक थे। पर सवाल बड़ा कीमती है। न भी पूछा हो, तो बुद्ध की पत्नी को पूछना चाहिए था। बुद्ध वापस लौट आए हैं। यशोधरा पूछती हैं कि एक ही बात मुझे पूछनी है। जो तुम्हें वहां जंगल में जाकर मुझे छोड़कर मिला, क्या तुम हाथ रखकर छाती पर कह सकते हो, वह यहीं नहीं मिल सकता था—मेरे पास? बुद्ध निरुत्तर खड़े रह गए। पता नहीं वे खड़े रहे या नहीं। रवीन्द्रनाथ ने उनको निरुत्तर खड़े रखा है। और मैं भी मानता हूं कि उत्तर है नहीं। बुद्ध को चुप खड़े रह जाना ही पड़ा होगा, क्योंकि झूठ वे बोल नहीं सकते। और सच यही है कि जो उन्होंने जंगल में पाया है, वह यशोधरा के पास भी पाया जा सकता था, क्योंकि वह वहां भी मौजूद है। संसार से हटा ले प्रभु हमें। क्यों? वही संसार बना रहा है। आप प्रार्थना कर रहे हैं—हटा लो!

कृष्ण से यह कह रहा है, तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं, तुम्हारा तत्व। मैं तो तुम्हें सार भूत जानना चाहता हूं, तुम क्या करते हो, वह मुझे मतलब नहीं है। तुम क्या हो? तुम्हारा डूइंग नहीं, तुम्हारी बीइंग। मैं तुम्हारे उस केन्द्र को जानना चाहता हूं—जहां कोई गति नहीं है, जहां कोई कर्म नहीं

है, जहां सब शान्त और मौन है। प्रवृत्ति को हटा लो। लेकिन वह कह जरूर रहा है, लेकिन उसे पता नहीं कि वह साथ ही अपना विरोध भी कर रहा है। एक तरफ वह कहता है, हटा लो यह उग्र रूप और प्रसन्न हो जाओ। प्रसन्नता भी प्रवृत्ति है। और दूसरी तरफ वह कह रहा है कि प्रवृत्ति का मुझे कुछ पता नहीं, जानना भी नहीं चाहता, तत्व जानना चाहता हूं। प्रसन्नता भी कर्म है। जैसे उग्रता कर्म है, वैसे प्रसन्नता कर्म है। जैसे मृत्यु कर्म है, वैसे जीवन भी कर्म है।

लेकिन हम चुनाव करते ही चले जाते हैं। वह कहता है कि प्रसन्न, आनंदित हो जाइए। वह भी मानेगा कि शायद आनंदित होना ही तत्व है। वह भी तत्व नहीं है। तत्व तो शून्य है। और शून्य को देखने की क्षमता बड़ी मुश्किल है। हम प्रवृत्ति को ही देख पाते हैं, शून्य को हम कहां देख पाते हैं। शून्य जब प्रवृत्ति बनता है तभी हमारी पकड़ में आता है, नहीं तो कहां पकड़ में आता है। मैं यहां चुप बैठ जाऊं तो मेरा मौन आपको पकड़ में नहीं आएगा। जब मेरा मौन, शब्द बनता है तब आपको सुनाई पड़ता है। जो मैं कहना चाहता हूं, वह तो मेरे मौन में है। जब मैं उसे शब्द का रूप देता हूं तब वह आप तक पहुंचता है।

अगर आप मुझसे कहें कि ऐसा कुछ करिये जो मैं आपका मौन सुन पाऊं, तो बड़ी कठिन होगी बात; क्योंकि उसके लिए फिर आपके कान काम नहीं दे सकेंगे, वे सिर्फ शब्द सुनने को बने हैं। और उसके लिए आपकी बुद्धि भी काम नहीं देगी, क्योंकि वह भी सिर्फ शब्द पकड़ने को बनी है। फिर तो आपको भी शून्य में ही खड़ा होना पड़ेगा तो ही फिर मौन से सुना जा सकता है।

एक अद्भुत साधक कुछ समय पहले हुआ था, अनिर्वाण उस साधक का नाम था। बहुत कम लोग जानते हैं, क्योंकि कभी कोई, बहुत लोगों के पास नहीं आने दिया। एक फ्रेंच महिला अनिर्वाण के पास कोई पांच साल तक रही। बस वह अकेली एक किताब उसने लिखी है। वही जगत को जानकारी है—अनिर्वाण के सम्बन्ध में। पांच साल अनिर्वाण के पास चुपचाप बैठी रही। वे कुछ कहेंगे नहीं, या कुछ कहेंगे तो बहुत अल्प।

पांच साल बाद उसने अनिर्वाण से कहा, आपने कुछ मुझे कहा नहीं, हालांकि मैंने बहुत कुछ सुना। अनिर्वाण ने कहा, यही मेरी एक मात्र

महत्वाकांक्षा थी। जब से मैं जन्मा हूं, जब से मुझे होश है तब से मेरी एक ही महत्वाकांक्षा थी कि किसी को मैं मौन से कुछ कह पाऊं। लेकिन मौन होने के लिए कोई राजी नहीं होता। पांच साल चुप बैठी रही। दो साल निरंतर उनके पास चुप बैठ-बैठकर वह क्षमता आई जब उनका मौन थोड़ा-सा स्पर्श करने लगा। पांच साल होने पर सुनाई पड़ना शुरू हुआ। पांच साल पूरे होने पर जब उस महिला ने कहा कि अब मैं सुन पाती हूं जो आप मौन में कहते हैं, तो अनिर्वाण ने कहा कि बस अब तेरा काम पूरा हो गया। अब तू यहां से जा, क्योंकि अब तू कहीं भी हो तो सुन पाएगी, क्योंकि मौन के लिए कोई बाधा नहीं है; शब्द के लिए दूरी बाधा है। अब तू जा, तेरा काम पूरा हो गया है।

उस महिला ने लिखा है, अन्तिम क्षण विदा देते वक्त जब हाथ जोड़कर हम नमस्कार करके अलग हो गए तब मुझे ख्याल आया कि पांच साल हो गए मैंने उनके हाथ का भी स्पर्श नहीं किया। लेकिन पांच साल तक मुझे ख्याल नही आया कि मैंने अनिर्वाण के शरीर को छुआ तक नहीं है, हाथ का भी स्पर्श नहीं किया। यह विदा होने पर ख्याल आया। तब उसे लगा कि यह ख्याल ही इसलिए आया कि मौन में निकटता इतनी गहन थी कि और स्पर्श उससे ज्यादा क्या निकटता दे सकता है!

लेकिन अगर आप कहें मौन में सुनना है, तो फिर मौन होने की कला सीखनी पड़ेगी। वह अर्जुन कह रहा है कि मैं आपको देखना चाहता हूं आपके तत्व में। लेकिन तत्व में केवल वही देख सकता है जो स्वयं तत्व होने को राजी हो, शून्य होने को राजी हो। शून्य होने को जो राजी है, वह इस जगत के शून्य को देख लेगा। जब तक हम शून्य होने को राजी नहीं हैं तब तक हमें प्रवृत्ति ही दिखायी पड़ेगी। और जब तक प्रवृत्ति है तब तक चुनाव रहेगा। हम कहेंगे—उदासी हटाओ, उग्रता हटाओ, यह क्रूरता हटाओ, यह मृत्यु का उग्र रूप बन्द करो; मुस्कुराओ, प्रसन्न हो जाओ। हम चुनेंगे, हमारी पसन्द की प्रवृत्ति।

ध्यान रहे, इस सूत्र में थोड़ी एक बात ख्याल ले लेने जैसी है। संसार को अक्सर हम कहते हैं—प्रवृत्ति का जाल और संन्यासी को हम कहते हैं—निवृत्ति, प्रवृत्ति से हट जाना। लेकिन संसार प्रवृत्ति का जाल है, यह तो सच है और कोई कितना ही संसार से भागे संसार के बाहर नहीं जा

सकता, यह भी ध्यान रखना। जहां भी जाएं वहीं संसार है, कहीं भी जाएं वहीं संसार है; क्योंकि सभी तरफ प्रवृत्ति है उसकी। कहीं बाजार की प्रवृत्ति है, कहीं वृक्षों में पक्षियों की कलकलाहट है, कहीं नदी में पानी का शोर है, कहीं पहाड़ों का सन्नाटा; लेकिन सब उसकी ही प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं। प्रवृत्ति के बाहर जाने का एक ही उपाय है कि प्रवृत्ति में चुनना मत। यह मत कहना कि यह विकराल है—हटाओ, प्रसन्न को प्रकट करो। यह चुनाव बांधता है, प्रवृत्ति नहीं बांधती। और जो प्रवृत्ति में चुनाव नहीं करता, वह अचानक शून्य हो जाता है, क्योंकि चुनाव से ही भीतर का शून्य खंडित होता है। जो शून्य हो जाता है, वह उसे तत्व से जान लेता है।

अर्जुन कहता है, हे भगवन् कृपा करके मेरे प्रति कहिए कि आप उग्र रूप वाले कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार होवे, आप प्रसन्न होइए। आदि स्वरूप आपको मैं तत्व से जानना चाहता हूं, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति को मैं जानता हूं। न आपकी प्रवृत्ति से मुझे कोई प्रयोजन है, आप क्या हैं—वही मैं जानना चाहता हूं।

□ संकलन : *अरविन्दकुमार*

नियम संख्या ८ के अनुसार 'युक्रांद' के स्वत्वाधिकार संबंधी व अन्य विवरण

फार्म ४

१—प्रकाशन का स्थान	:	७६०, राइट-टाउन, जबलपुर
२—प्रकाशन आवृत्ति	:	मासिक
३—मुद्रक	:	अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर
४—प्रकाशक	:	अरविंदकुमार
५—संपादक	:	अरविंदकुमार
६—मुद्रक, प्रकाशक व संपादक की राष्ट्रीयता	:	भारतीय
७—स्वत्वाधिकारी	:	अरविंदकुमार

मैं अरविंदकुमार प्रमाणित करता हूं कि मेरे ज्ञान और विश्वास के अनुसार उपयुक्त विवरण सत्य है।

जबलपुर
२१ मार्च, ७४

हस्ताक्षर :
अरविंदकुमार

गीत

प्रीत फिर भी अनगाई है

तुम्हें व्यक्त करने के सब आयास हुए निष्फल
लिखे गीत पर गीत, प्रीत फिर भी अनगाई है

कभी रूप के पार कौंध भर दिखती है तेरी
प्रिय, मुझसे खेलोगे कब तक आंखमिचौनी ये
राशि-राशि सौन्दर्य तुम्हारा देख विमोहित हूं
तेरे अंकन में सारी भाषाएं बौनी हैं

पर इस जीवन-बांसुरिया में तेरे ही सुर हैं
तेरा ही संगीत यहां दे रहा सुनाई है

लगती हर अभिव्यक्ति अकिंचन तेरी तुलना में
फीके हैं सब राग-रंग तेरी छवि के आगे
एक झलक दे गये तभी से चैन नहीं मन को
फूट पड़ी है वही व्यथा बन गीतों की रागें

रहो सतत् प्रत्यक्ष तभी भगवान तुम्हें जानूं
यदा-कदा दिख जाओ इसमें कौन बड़ाई है

□ *स्वामी योग प्रीतम*
भीलवाड़ा (राजस्थान)

मेरी
अंतस् जीवन साधना की
त्रिवेणी :

तमस् रजस् और सत्व

✠

भगवान श्री के अंतरंग साधना के जीवन-सूत्र जो उन्होंने गीता अध्याय १४ के ५वें प्रवचन के अवसर पर व्यक्त किए। साधकों की जीवन-प्रेरणा के लिए विशेष रूप से 'युक्रांद' प्रस्तुत कर रहा है।

✠

पहले कुछ प्रश्न :—

पहला प्रश्न, आपने तमस्, रजस् और सत्व और उनकी समान मात्राओं का होना क्रमशः लाओत्से, जीसस, महावीर और कृष्ण के व्यक्तित्व से स्पष्ट किया। इस संदर्भ में याद आता है कि आप अतीत में अत्यन्त क्रांतिकारी थे। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक तलों पर आपने सारे देश में उथल-पुथल कर दी थी। जिससे स्पष्ट था कि आप जीसस की तरह रजस् प्रधान हैं। फिर उन्नीस सौ सत्तर के बाद आपने अपने को बिलकुल भीतर सिकोड़ लिया और हमें लगता है कि अब आप सत्व प्रधान हैं। क्या ऐसा परिवर्तन सम्भव है ?

कुछ बातें ध्यान में लें तो समझ में आ सकेगा। एक तो बुद्ध महावीर मुहम्मद और जीसस जैसे व्यक्तित्व हैं—इन व्यक्तियों ने एक ही गुण को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। मुहम्मद और जीसस हैं, रजोगुण उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। लाओत्से और रमण हैं, तमस् उनकी

अभिव्यक्ति का माध्यम है। कृष्ण तीनों गुणों को एक साथ अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग कर रहे हैं।

एक और भी संभावना है, जिसका प्रयोग मैंने किया है—तीनों गुणों का एक साथ नहीं, एक-एक गुण का अलग-अलग। मेरी दृष्टि में वही सर्वाधिक वैज्ञानिक है, इसलिए उसका चुनाव किया।

तीनों गुण प्रत्येक व्यक्ति में हैं। दो गुणों से कोई भी व्यक्ति बंध नहीं सकता। एक गुण के साथ किसी भी व्यक्ति की संभावना नहीं है। उन तीनों का जोड़ आपका शरीर और मन है। जैसे बिना तीन रेखाओं के कोई त्रिकोण नहीं बन सकता, वैसे ही बिना तीन गुणों से कोई व्यक्तित्व नहीं बन सकेगा। उसमें एक भी गुण कम होगा तो व्यक्तित्व बिखर जायेगा। कोई व्यक्ति कितना ही सत्व प्रधान हो—सत्व प्रधान का इतना ही अर्थ है कि सत्व प्रमुख है, बाकी दो गुण सत्व के नीचे छिप गये हैं, दब गये हैं। लेकिन वे दो गुण मौजूद हैं और उनकी छाया सत्व गुण पर पड़ती रहेगी। प्रधानता उनकी नहीं है, वे गौण हैं। आपमें एक कोई गुण प्रकट हो, तब दो मौजूद होते हैं।

कृष्ण ने तीनों गुणों का एक साथ प्रयोग किया है। जैसे तीनों गुणों की तीनों भुजायें समान लम्बाई की हैं। त्रिभुज की तीनों रेखाएं समान लम्बाई की हैं वैसे ही कृष्ण का व्यक्तित्व तीनों गुणों का संयुक्त जोड़ है। और इसलिए कृष्ण को समझना उलझन की बात है। एक गुण वाले व्यक्ति को समझना बहुत आसान है। जिसमें दो गुण दबे हों उसके व्यक्तित्व में एक संगति होगी, कंसिसटेन्सी होगी। लाओत्से के व्यक्तित्व में जैसी कंसिसटेन्सी है, संगति है, वैसी कृष्ण के व्यक्तित्व में नहीं है। लाओत्से का जो स्वाद एक शब्द में है, वही सारे शब्दों में हैं। बुद्ध के वचनों में एक संगति है, गहन संगति है। बुद्ध ने कहा है जैसे सागर को तुम कहीं से चखो, वह खारा है, वैसा ही तुम मुझे कहीं से चखो, मेरा स्वाद एक है। जीसस या मोहम्मद, इन सबके स्वाद एक है।

लेकिन कृष्ण में आप अनेक स्वाद ले सकते हैं। तीन तो निश्चित ही ले सकते हैं। और चूंकि तीनों का मिश्रण है, इसलिए बहुत नए स्वाद भी उस मिश्रण से पैदा हुए हैं। इसलिए कृष्ण का रूप बहुरंगी है। और कोई भी व्यक्ति कृष्ण को पूरा प्रेम नहीं कर सकता, उसमें चुनाव करेगा। जो पसन्द

होगा वह बचाएगा, जो ना पसन्द है उसको काट देगा। इसलिए अब तक कृष्ण के ऊपर जितनी भी व्याख्याएं हुई, सब चुनाव की व्याख्याएं हैं। न तो शंकर कृष्ण को पूरा स्वीकार करते हैं, न रामानुज, न निम्बार्क, न बल्लभाचार्य, न तिलक, न गांधी, न अरविन्द—कोई भी कृष्ण को पूरा स्वीकार नहीं करता। उसमें से उतने हिस्से कृष्ण में से काट देने पड़ते हैं, जो असंगत मालूम पड़ते हैं, विरोधाभासी मालूम पड़ते हैं, जो एक दूसरे का खण्डन करते हुए प्रतीत मालूम पड़ते हैं।

जैसे गान्धी हैं, गान्धी अहिंसा को इतना मूल्य देते हैं—और कृष्ण अर्जुन के लिए हिंसा का उकसावा देते हैं—यह उनके लिए अड़चन की बात हो जायेगी। गांधी सत्य को परम मूल्य देते हैं। कृष्ण झूठ भी बोल सकते हैं, यह गान्धी की समझ के बाहर है। कृष्ण धोखा भी दे सकते हैं, यह गांधी का मन स्वीकार नहीं करेगा। और अगर कृष्ण ऐसा कर सकते हैं तो गान्धी के लिए कृष्ण पूज्य न रह जायेंगे। तो एक ही उपाय है कि गांधी किसी तरह समझा लें कि कृष्ण ने ऐसा नहीं किया है, या तो यह कहानी है, प्रतीकात्मक है, सिम्बोलिक है। यह जो युद्ध है महाभारत का, यह वास्तविक युद्ध नहीं है, गान्धी के हिसाब से। ये कौरव और पाण्डव असली मनुष्य हैं, ये सिर्फ प्रतीक हैं बुराई और भलाई के। और युद्ध धर्म और अधर्म के बीच है, मनुष्यों के बीच नहीं।

पूरी कथा एक पैरेबिल है, तब फिर गान्धी को एक अड़चन है, बुराई को मारने में अड़चन नहीं है, बुरे आदमी को मारने में गान्धी को अड़चन है। अगर सिर्फ बुराई को काटना हो तो अड़चन नहीं है, लेकिन अगर बुराई को काटना हो तो अर्जुन को भी कोई सवाल उठने का कारण नहीं था। सवाल तो इसलिए उठ रहा था कि बुरे आदमी को काटना है। सवाल तो इसलिए उठ रहा है कि उस तरफ जो बुरे लोग हैं, वे अपने ही हैं, निजी सम्बन्धी हैं। उनसे ममत्व है—उनसे राग है, और उनके बिना दुनिया अधूरी और बेमानी हो जायेगी।

कृष्ण का व्यक्तित्व असंगत होगा ही—तीन गुण एक साथ हैं, असंगति पैदा करेंगे।

एक और संभावना है, जिसका प्रयोग मैंने किया है। उसमें भी असंगति होगी ही, लेकिन वैसी नहीं जैसी कृष्ण में है। तीनों गुण व्यक्ति में हैं और व्यक्तित्व की पूर्णता तभी होगी जब तीनों गुण अभिव्यक्ति में उपयोग में

लै लिए जायें। उनमें से कोई भी दबाया न जाये। कृष्ण भी दमन के पक्ष में नहीं हैं, मैं भी दमन के पक्ष में नहीं हूं। और जो भी व्यक्तित्व में है, उसका सृजनात्मक उपयोग हो जाना चाहिए।

मेरी प्रक्रिया तीनों गुणों को एक साथ अभिव्यक्ति के लिए न चुनकर तीन अलग-अलग काल खण्डों में, एक-एक गुण को अभिव्यक्ति के लिए चुनना है। पहले मैंने तमस् को चुना है, क्योंकि वही आधारभूत है, बुनियाद में है। बच्चा पैदा होता है मां के गर्भ से, नौ महीने मां के गर्भ में बच्चा तमस् में होता है, गहन अन्धकार में होता है। कोई क्रिया नहीं होती, परम आलस्य होता है। श्वांस लेने तक की क्रिया बच्चा स्वयं नहीं करता वह भी मां ही करती है, भोजन लेने की क्रिया बच्चा स्वयं नहीं करता, वह भी मां ही करती है। बच्चे में खून भी प्रवाहित होता है, तो वह भी माँ का ही खून रूपान्तरित होता रहता है। बच्चा अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करता है। अक्रिया की ऐसी अवस्था परिपूर्ण तमस् की अवस्था है। बच्चा है, प्राण है, जीवन है, लेकिन जीवन किसी तरह का कर्म नहीं कर रहा है। गर्भ की अवस्था में अकर्म पूरा है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष की तलाश, स्वर्ग की आकांक्षा, निर्वाण की खोज, सिर्फ इसलिए पैदा होती है कि हर व्यक्ति ने अपने गर्भ के क्षण में ऐसा अक्रिया से भरा हुआ क्षण जाना है, इतना शून्यता से भरा हुआ अनुभव किया है, वह स्मृति में टंगा हुआ है। आपके गहरे में छिपा है, वह जो अनुभव नौ महीने गर्भ में हुआ। वह इतना सुखद था, क्योंकि जब कुछ भी न करना पड़ता हो, कोई दायित्व न हो, कोई जिम्मेदारी न हो, कोई बोझ न हो, कोई चिन्ता न हो, कोई काम न हो—सिर्फ आप थे, जस्ट बीइंग, सिर्फ होना मात्र था—जिसको हम मोक्ष कहते हैं, वैसी ही करीब-करीब अवस्था मां के गर्भ में थी। वही अनुभूति आपके भीतर छिपी है। इसलिए जीवन में कहीं भी आपको सुख नहीं मिलता और हर जगह आपको कमी मालूम पड़ती है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं यह तभी हो सकता है जब आपके अनुभव में कोई ऐसा बड़ा सुख रहा हो, जिससे आप तुलना कर सकें। हर आदमी कहता है, जीवन में दुख है। सुख का आपको अनुभव न हो, तो दुख की प्रतीति आपको कैसे होगी? और हर आदमी कहता है कि कोई सुख की खोज करनी है। किस सुख की खोज कर रहे हैं? जिसका कभी स्वाद न

लिया हो उसकी खोज भी कैसे करियेगा ? और जिससे हमारा कोई परिचय नहीं है उसकी हम जिज्ञासा कैसे करेंगे ? हमारे अचेतन में जरूर कोई अनुभव की किरण है, कोई बीज छिपा हुआ है, कोई आनन्द हमने जाना है, कोई स्वर्ग हमने जिया है, कोई संगीत हमने सुना है, कितना ही विस्मृत हो गया हो, लेकिन हमारे रोएं-रोएं में वह प्यास छिपी है, और वह खबर छिपी है, हम उसकी ही खोज कर रहे हैं।

मनोवैज्ञानिक कहता है कि मोक्ष की खोज एक विराट गर्भ की खोज है। और जब तक यह सारा अस्तित्व हमारा गर्भ न बन जायेगा तब तक यह खोज जारी रहेगी। यह बात बड़ी कीमती है—बहुत अर्थपूर्ण है। लेकिन इस सम्बन्ध में पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि बच्चा नौ महीने अपनी मां के गर्भ में ठीक तमस् में पड़ा है। वहां न तो राजसी होने का सवाल है, न सात्विक होने का सवाल है—गहनतम आलस्य में पड़ा है, गहन आलस्य। बस सोया है, चौबीस घण्टे सो रहा है। नौ महीने की लम्बी नींद है फिर जैसे ही बच्चा पैदा होता है फिर बाइस घण्टा सोएगा। फिर बीस घण्टे, फिर अट्ठारह घण्टे, धीरे-धीरे जागेगा। वर्षों लग जायेंगे, तब वह आकर आठ घण्टे की नींद पर ठहरेगा। और जन्मों लग जायेंगे, जब नींद बिलकुल शून्य हो जायेगी। और वह परिपूर्ण जागरूक हो जायेगा कि निद्रा में भी जागता रहे। जिसको कृष्ण कहते हैं जब सभी सोते हैं, तब भी योगी जागता है, इसके लिए जन्मों की यात्रा होगी।

तमस् आधार है और सत्य शिखर है।

इस भवन का जिसे हम जीवन कहें, तमस् बुनियाद है, रजोगुण बीच का भवन है और सत्वगुण मन्दिर का शिखर है।

यह जीवन की व्यवस्था है मेरी दृष्टि में। इसलिए मैंने जीवन के पहले खण्ड को, तमस् को ही साधना बनाया है। जीवन के मेरे प्राथमिक वर्ष ठीक लाओत्से की तरह तमस् की अनुभूति में ही बीते हैं। इससे लाओत्से से मेरा लगाव बुनियादी है, आधार भूत है। सब भांति मैं आलस्य में था और आलस्य ही साधना थी। जहां तक बने कुछ न करना, करना मजबूरी ही हो तो उतना ही करना, जितना अपरिहार्य हो जाय। अकारण हाथ भी न हिलाना, पैर भी न चलाना। मेरे घर में ही ऐसी हालत हो गई थी कि मैं बैठा हूं और मेरी मां मेरे सामने बैठकर कहती है कोई दिखाई नहीं पड़ता, किसी को सब्जी लेने बाजार भेजना है। मैं सुन रहा हूं, मैं सामने ही बैठा

हूं और मैं जानता था कि घर में आग भी लग जाती तो भी वह यही कहती यहां कोई दिखाई नहीं पड़ता, घर में आग लग गई कौन बुझाये। तब चुपचाप अपनी निष्क्रियता को देखना है—सिर्फ उसके प्रति साक्षी और ध्यान से भरे रहना है। कुछ घटनाओं से आपको कहूं तो ख्याल में आ जाये।

मेरे विश्वविद्यालय में आखिरी वर्ष में एक दर्शन शास्त्र के आचार्य थे और जैसा कि दार्शनिक अक्सर झक्की एक्सेन्ट्रिक होते हैं, वे भी थे। और उनका जो झक्कीपन था, वह यह था कि वे स्त्री को नहीं देखते थे। दुर्भाग्य से मैं और एक युवती, दो ही उनके विद्यार्थी थे उनके विषय में। तो उनको आंख बन्द करके ही पढ़ाना पड़ता था। मेरे लिए यह सौभाग्य हो गया, क्योंकि वे पढ़ाते थे और मैं सोता था। वे आंख खोल नहीं सकते थे, क्योंकि युवती थी। लेकिन वे मुझ पर बहुत प्रसन्न थे, क्योंकि वे सोचते थे कि मेरा भी शायद यही सिद्धांत है, युवती को मैं भी नहीं देखता। और युवा स्थिति में कम से कम उन जैसा एक आदमी और भी है, जो स्त्रियों की तरफ आंख बन्द रखता है। इससे वे बड़े प्रसन्न थे। वे कई बार मुझे कहे भी, जब कभी अकेले में मिल जाते तो वे मुझसे कहते कि तुम अकेले हो, जो मुझे समझ सकते हो, लेकिन एक दिन सब गड़बड़ हो गया।

दूसरी उनकी आदत थी कि वे एक घण्टे का नियम नहीं मानते थे। इसलिए उनको अन्तिम पीरिएड ही यूनिवर्सिटी देती थी, लेने के लिए। क्योंकि चालीस मिनिट के बाद वे कहते थे, शुरु करना मेरे बस में है, अन्त करना मेरे बस में नहीं है तो साठ मिनिट में पूरा हो, अस्सी मिनिट में पूरा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था। तो घण्टा बजे, उससे मैं बन्द नहीं करुंगा, जब मेरी बात पूरी हो जाय तभी मैं बन्द करुंगा। तो करीब अस्सी मिनट, नब्बे मिनिट बोलते थे, मैं सोता था। और युवती को कह रखा था जब पीरियड पूरा होने लगे तो मुझे इशारा करें। वह कृपा करके इतनी व्यवस्था कर देती थी कि इशारा कर देती और मैं उठ जाता था। एक दिन उसे बीच में जाना पड़ा, कोई बुलावा आ गया, कुछ कारण आ गया, और वह बीच से चली गई। मैं सोया रहा, वे बोलते रहे। घण्टा पूरा हो गया, उन्होंने आंख खोली, मैं सोया था, उन्होंने मुझे हिलाया और जगाया, बोले कि नींद लग गई? मैंने कहा कि अब आपको पता ही चल गया तो मैं कह दूं, मैं रोज सो रहा हूं, मुझे स्त्रियों से कोई ऐतराज नहीं है। और यह बड़ा सुखद है, डेढ़ घण्टे आप बोलते हैं, मैं सो लेता हूं।

सोना मैंने करीब-करीब ध्यान बना रखा था, जितना ज्यादा सो सकूं, उतना ज्यादा सोता था। एक बड़े मजे की बात है कि अगर आप जरूरत से ज्यादा सोएं, तो सोने में जागरण निर्मित होने लगता है। अगर आप जरूरत से कम सोएं तो नींद एक मूर्छा होगी। अगर आप जरूरत से ज्यादा सोएं तो सो नहीं सकते। शरीर की जरूरत पूरी हो जाती है, धीरे-धीरे शरीर की कोई जरूरत नहीं रह जाती और आप सोए हुए हैं, तो भीतर कोई जाग कर देखने लगता है। अगर आप छत्तीस घण्टे सोऐ हुए पड़े रहे तो आपको थोड़ी सी झलक मिलेगी उस बात की जो कृष्ण कह रहे हैं तस्याम् जागृति संयमी। क्योंकि नींद की कोई जरूरत शरीर को न रह जायेगी। और शरीर को आप नींद की अवस्था में पड़े रहने दें तो भीतर से जागरण का स्वर शुरु हो जायेगा। उन दिनों में ही निरन्तर सो-सो कर मैंने जाना कि सोए में जागना हो सकता है। रात भी सोता, सुबह भी सोता, दोपहर भी सो जाता, जब मौका मिलता। घर के लोगों को प्रियजनों को परिवार के लोगों को यही ख्याल था कि मैं निपट आलसी हूं. मुझसे जीवन में कुछ हो नहीं सकता। एक हिसाब से ठीक ही था उनका ख्याल पर मेरी तरफ से नहीं, मेरे लिए वह साधना थी।

मेरे एक और प्रोफेसर थे, मेरे प्रोफेसर भी थे, मेरे मित्र भी थे। और जैसा आलसी मैं था, ठीक वैसे ही आलसी थे। अकेले वे भी रहते थे और अकेले मैं भी रहता था। उन्होंने कहा कि बेहतर तो यह होगा कि हम दोनों साथ ही रहें। मैंने कहा इसमें थोड़ी अड़चन होगी। हो सकता है कि आपकी नींद में मेरे कारण बाधा हो, मेरी नींद में आपके कारण बाधा हो। फिर भी आप चाहें तो......तो साथ रहने में कुछ व्यवस्था बनानी जरूरी थी और दोनों ही आलसी थे। वे अब भी वैसे ही हैं, उन्होंने उस गुण का त्याग नहीं किया। उन्होंने कभी उसको साधना नहीं बनाया, अन्यथा वह छूट जाता।

ध्यान रहे जिस तत्व को भी साधना बना लें, थोड़े दिन में आप पार भी चले जायेंगे।

साधना का मतलब ही ट्रान्सेन्डन्स है, अतिक्रमण है। और जिसको भी आप पूरी तरह भोग लें, आप उसके भीतर नहीं रह सकते। अगर आप आलस्य को पूरी तरह भोग लें, आप अचानक पायेंगे कि आलस्य विदा हो गया।

जिससे मुक्त होना हो, उसे पूरा भोग लेना जरूरी है।

इसलिए मैंने तमस् को पहले पूरा ही भोग लेना उचित समझा है।

साथ ही रहे, तो पहले ही दिन, रात हमें तय करना पड़ा कि कल से हमारी व्यवस्था कैसी होगी। अब तक अलग-अलग थे, इसलिए व्यवस्था का कोई सवाल नहीं था। उन्होंने कहा जो व्यक्ति पहले उठे, वह दूध लेने जाये। मैंने कहा यह बिलकुल स्वीकार है। मैं भी खुश था, वे भी खुश थे, पर दोनों भ्रांति में थे। तो मैंने सोचा कि ऐसे सुबह पहले उठने की जरूरत क्या है और वे भी यही सोच रहे थे। नौ बजे के करीब मेरी नींद खुली तो मैंने देखा कि वे सोए हैं, तो मैं फिर सो गया। दस बजे के करीब उनकी नींद खुली होगी, उन्होंने देखा कि मैं सोया हूं। वे भी सोना चाहे, लेकिन एक अड़चन थी उनको, ग्यारह बजे युनिवर्सिटी पहुंचना था, वे नौकरी में थे, मैं तो विद्यार्थी था, मुझे जाने की कोई आवश्यकता भी नहीं थी, जरूरी भी नहीं था, ऐसे भी मैं कम ही जाता था। आखिर मजबूरी में उनको उठना पड़ा, दूध लेने जाना पड़ा। जब तक वे आये तब तक उठ कर मैं बैठा था, उन्होंने कहा कि यह दोस्ती नहीं चल सकती, क्योंकि यह तो रोज का सवाल है। मुझे ग्यारह बजे युनिवर्सिटी जाना है तो मैं ज्यादा से ज्यादा दस बजे तक प्रतीक्षा कर सकता हूं, तुम पूरे दिन प्रतीक्षा कर सकते हो। इसका मतलब हुआ कि दूध मुझे ही रोज लाना पड़ेगा, यह दोस्ती नहीं चल सकती।

जिस बात को भी करने से बचा जा सके, मैंने प्राथमिक चरण में पूरी तरह बचने की कोशिश की। दो वर्ष विश्वविद्यालय में था, मैंने कभी अपना कमरा नहीं झाड़ा। अपने पलंग को दरवाजे पर रख छोड़ा था, जिससे सीधा दरवाजे से पलंग पर प्रवेश हो जाये और सीधे बाहर भी निकला जा सके। और अकारण पूरे कमरे को क्यों...न उसमें प्रवेश, न उसको साफ करने का कोई सवाल है पर उसका अपना सुख था। और चीजें जैसी हैं उनमें जितना कम रद्दोबदल करना पड़े, क्योंकि रद्दोबदल का मतलब होता है कि कुछ करना पड़ेगा, उनको वैसा ही रहने देना। पर इससे अनूठे अनुभव भी हुए। और हर गुण का अनूठा अनुभव है। कितना ही कचरा था और कितनी ही गन्दगी थी उसके बीच, ऐसे ही रहने का भाव आ गया, जैसे कितनी ही स्वच्छता के बीच रहने की स्थिति हो।

जिस विश्वविद्यालय में मैं था, उसके भवन तब तक निर्मित नहीं हुए थे, नया विश्वविद्यालय निर्मित हुआ था और मिलेट्री के बैरेक्स का भी

उपयोग हॉस्टल्स के लिए हो रहा था। तो अक्सर सांझ आ जाते थे, क्योंकि घने जंगल में ही, खुले जंगल में ही बैरेक्स थे। तो मैं पड़ा हुआ अपने बिस्तर पर उनको देखता रहता था, वे आ जाते, बैठ जाते, कमरे में विश्राम कर लेते। न कभी उन्होंने कुछ किया, न मैंने कभी उनके लिए कुछ किया। करने का भाव ही न हो तो बहुत सी चीजें सहज स्वीकार हो जाती हैं। और करने का भाव न हो तो जिन्दगी में असन्तोष की मात्रा एकदम नीचे गिरने लगती है। उन दिनों में कोई असन्तोष का कारण नहीं था, क्योंकि जब आप कुछ कर ही नहीं रहे हों तो आपकी कोई मांग नहीं रह जाती। और जब आप कुछ कर ही नहीं रहे हों तो फल का कोई सवाल ही नहीं है, जब आप कुछ कर ही नहीं रहे हों तो जो भी मिल जाये—तो कभी-कभी कोई मित्र दया करके कमरे को साफ कर जाता—तो मैं बड़ा अनुग्रहीत होता था।

मेरे दर्शन विभाग के अध्यक्ष परीक्षा के समय सुबह सात बजे स्वयं उठकर मेरे दरवाजे पर गाड़ी लेकर खड़े हो जाते कि मुझे आठ-दस दिन तक परीक्षा चले, हाल में छोड़ देते थे क्योंकि मैं सोया न रह जाऊं। सबकी दया और करुणा अनायास मिलती थी। क्योंकि सभी को ख्याल था कि जिस बात से भी करने से बचा जा सके, मैं बचूंगा। बड़ी आश्चर्य की घटनाएं घटती थीं, वह इसलिए कह रहा हूं कि आपको ख्याल में आ सके कि जिन्दगी बहुत रहस्यपूर्ण है। प्रोफेसर परीक्षा के पहले आकर मुझे कह जाते कि यह प्रश्न जरूर देख लेना। मैं कभी किसी से पूछने नहीं गया। उनके बताने पर भी उनको भरोसा नहीं था कि मैं देखूंगा। वे मेरी तरफ ऐसे देखते कि समझ में आया ? इसको जरूर ही देख लेना, इसका आना पक्का है। जाते-जाते मुझसे कह जाते यह पेपर मैंने ही निकाला है, उसे बिलकुल ही देख लेना, इसमें कोई शक-शुबह ही नहीं है, यह आएगा ही, फिर भी मैं उन्हें कभी भरोसा नहीं दिला सका कि मैं देखूंगा।

मैं यह कह रहा हूं कि अगर आप जगत से छीनने झपटने जाएं तो हर जगह प्रतिरोध है, और अगर आप कुछ न करने की हालत में हों, तो सब द्वार आपको देने के लिए खुल जाते हैं।

उन दिनों में न मैं ईश्वर को मानता था, न आत्मा को। न मानने का कारण कुल इतना था कि इन्हें मानने से फिर कुछ करना पड़ेगा। आलसी के लिए अनीश्वरवाद संगत है। क्योंकि अगर ईश्वर है तो काम

शुरू हो गया, कुछ करना पड़ेगा। अगर आत्मा है तो कुछ करना पड़ेगा। लेकिन कुछ न करते हुए बिना ईश्वर और आत्मा को मानते हुए, बस चुपचाप पड़े रहने में ही उस सबकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है, जिसको हम आत्मा कहें, ईश्वर कहें। और मैंने तब तक तमस् को नहीं छोड़ा जब तक तमस् ने मुझे नहीं छोड़ दिया। तब तक मैंने तय किया था कि चलता रहूंगा ऐसा ही, बिना कुछ किए।

मेरी अपनी समझ यह है कि अगर आप तमस् को ठीक से जी लें, तो उसके बाद रजोगुण अपने आप पैदा हो जाएगा। क्योंकि यह दूसरा गुण है, जो आपकी दूसरी मंजिल में छिपा है। पहली मंजिल पूरी हो गई, आप सीढ़ियां पार कर आए, रजोगुण शुरू हो जायेगा। आपमें सक्रिया का उदय होगा। लेकिन यह सक्रियता बहुत अनूठी होगी। यह सक्रियता राजनैतिक की विक्षिप्तता नहीं होगी। अगर आलस्य को आपने साधना बनाया हो और आलस्य आपका शून्यता में जाने का मार्ग बना हो, तो यह सक्रियता वासना की सक्रियता नहीं हो सकती, करुणा की ही हो सकती है। यह सक्रियता अब बांटने का एक क्रम होगी। तो उस सक्रियता को भी मैंने पूरी तरह जी लिया। बीच में कुछ बाधा डालना मेरी वृत्ति नहीं है। जो भी हो रहा है उसे होने देना है। और ऐसे अगर कोई होने दे, तो बहुत जल्दी गुणातीत हो जायेगा, क्योंकि तब स्वयं करने वाला नहीं रह जाता, गुण ही करने वाले रह जाते हैं। वह आलस्य का गुण था जिसने अपने को पूरा कर लिया।

फिर रजोगुण था, तो मैं दौड़ता रहा मुल्क में। जितनी यात्रा मैंने दस पन्द्रह साल में की, दो-तीन जीवन में भी एक आदमी नहीं कर सकता। जितना उन दस-पन्द्रह सालों में बोला उसके लिए दस पन्द्रह जीवन चाहिए। सुबह से रात तक चल ही रहा था, सफर ही कर रहा था। जरूरत, गैर-जरूरत विवाद और उपद्रव भी खड़े कर रहा था, क्योंकि जितने विवाद खड़े हो जायें, उतना मेरे रजोगुणों को निकल जाने की सुविधा थी। तो गांधी की आलोचना हाथ में ले ली, या समाजवाद की आलोचना हाथ में ली। उनसे मेरा कोई सबंध नहीं था। राजनीति से मेरा कोई लगाव नहीं है। रत्ती भर भी मुझे कोई रस नहीं है। लेकिन जब सारा मुल्क एक विक्षिप्तता में पड़ा हो, सारी मनुष्यता, और अगर आपको भी दौड़ना हो उस मनुष्यता के बीच, तो खेल के लिए ही सही, आपको कुछ उपद्रव अपने आसपास निर्मित कर लेना

चाहिए—कुछ विवाद खड़े कर लेने चाहिये। तो उस रजो गुण की यात्रा में ढेर विवाद खड़े हुए और मैंने उनका काफी सुख लिया।

अगर कर्म की विक्षिप्तता से वे पैदा होते तो उनसे दुख पैदा होता है। लेकिन सिर्फ रजोगुण की विकास की भांति, अभिव्यक्ति की भांति वे थे। तो उन सब में खेल था और रस था। वे विवाद एक अभिनय से ज्यादा नहीं थे। तो पंजाब में, पंजाब के एक बड़े वेदान्ती थे हरिगिरी जी महाराज। उनके वेदांत पर एक बड़ा विवाद हुआ। मेरे लिए एक खेल था, उनके लिए गंभीरता थी। क्योंकि उनके सिद्धांत का सवाल था वे करीब-करीब विक्षिप्त हो जाते थे। पुरी के शंकराचार्य से पटना में विवाद हो गया। मेरे लिए खेल था, उनके लिए पूरे व्यवसाय का सवाल था। वे इतने विक्षिप्त हो गये, इतने क्रोध में आ गये कि मंच से गिरते-गिरते बचे। सारा शरीर कंपित हो गया। पर रजोगुण को पूरा निकल जाने देना जरूरी है। बहुत मित्रों ने मुझे रोकना चाहा, पर मैं अपनी तरफ से नहीं रोकना चाहता था। रजोगुण ही झर जाये, उसकी निर्जरा हो जाये, तो ही रुकूंगा। महीने में तीन सप्ताह ट्रेन में ही बैठा हुआ था। सुबह बंबई था, तो रात कलकत्ता था, तो दूसरे दिन अमृतसर था, तो चौथे दिन लुधियाना था। पूरा मुल्क जैसे भ्रमण के लिए क्षेत्र था। और जगह-जगह उपद्रव स्वाभाविक थे, क्योंकि जब आप कर्म करेंगे, तब उपद्रव बिलकुल स्वाभाविक है। क्योंकि कर्म के प्रति-कर्म पैदा होते हैं, क्रिया से प्रतिक्रिया जन्मती है।

आलस्य के दिनों में मैं बोलता नहीं था, या न के बराबर बोलता था। कोई बहुत पूछे तो थोड़ा बोलता था। रजोगुण के दिनों में कोई न पूछे तो भी बोलता था, लोगों को ढूंढ़ कर बोलता था और बोलने में एक आग थी। मेरे पास अब भी लोग आते हैं, वे कहते हैं अब आप वैसा नहीं बोलते कि दिल थर्रा जाता था, एक जोश, एक अंगार था। वह अंगार मेरा नहीं था। वह उस गुण का था जिसकी हम चर्चा कर रहे थे। वह रजोगुण को जलाने का एक ही उपाय था, कि वह भभक कर जले, वह पूरे का पूरा अंगारा बन जाये तो जल्दी राख हो जायेगा। जितने धीरे जलेगा, उतना समय लगेगा। इकट्ठा जल जाये, पूर्णता से जले, तो जल्दी राख हो जायेगा। अब वह जल चुका है। और अब जैसे सांझ को सूरज सिकोड़ ले अपनी सारी किरणों को और जैसे सांझ को मछुआ अपने जाल को निकाल ले, ऐसा मैं सब सिकोड़ लूंगा। सिकोड़ लूंगा कहना ठीक नहीं है, ऐसा सब सिकुड़ जायेगा। क्योंकि तीसरा तत्व शुरू हो जाता है, इसलिए आप देखते ही रहे हैं कि मैं धीरे-धीरे सब हाथ हटाता जा रहा हूं।

आपकी जगह पचास हजार लोग सुन सकते हैं, लेकिन मैं राजी हूं कि पचास लोग सुनें, पचास से पांच पर राजी हो जाऊंगा।

तो जैसे-जैसे रजोगुण पूरा गिर जाता है और सत्व की प्रक्रिया शुरू होती है, वैसे-वैसे सभी क्रियायें फिर शून्य हो जायेंगी। तमोगुण में सारी क्रियाएं शून्य होती हैं। लेकिन वह शून्यता निद्रा जैसी होती है। सत्व गुण में भी सारी क्रियाएं शून्य हो जाती है। लेकिन वह शून्यता जागरूकता जैसी होती है।

तमस् और सत्व में एक समानता है कि दोनों शून्य होंगे। तमस् का रूप निद्रा जैसा होगा, सत्व का रूप जागरण जैसा होगा। और इसी को मैं ठीक जीवन की प्रक्रिया मानता हूं कि जीवन का प्रथम चरण तमस् मे गुजरे, द्वितीय चरण रज मे गुजरे, तृतीय चरण सत्व में गुजरे। और तीनों चरण में आप अपने को अलग रखने की कोशिश में लगे रहें तो आप साधना में हैं। और तीनों चरणों में आप जानते रहे कि यह मैं नहीं कर रहा हूं, ये गुण कर रहे हैं। यह मुझसे नहीं हो रहा है, मैं सिर्फ देखने वाला हूं, मैं सिर्फ साक्षी हूं। जब आलस्य हो तब भी, जब कर्म हो तब भी, जब सत्व हो तब भी, मैं सिर्फ देखने वाला हूं, मैं मात्र दृष्टा हूं। ऐसी प्रतीति बनी रहे, तो तीनों गुण चुक जायेंगे अपने से, और आप गुणातीत में ठहर जायेंगे। पहुंचना है चौथे में—तीनों के पार। जिसको चौथा कहना ठीक नहीं, जहां कोई भी नहीं है, जहां तीनों नहीं हैं।

कृष्ण ने तीनों को इकट्ठा व्यक्त किया है। मैंने तीनों को अलग-अलग एक-एक परिधि में बांट कर उपयोग किया है। इसलिए मेरी बातों में भी असंगति मिलेगी। जो मैंने तमस् के क्षणों में कहा है और जिया है मेरे रजस् के क्षणों में उसका कोई मेल नहीं बैठेगा। और जो मैंने रजस् के क्षणों में कहा है, वह मेरे सत्व के क्षणों में कही गई बातों से उसका बहुत विरोध हो जायेगा।

इसलिए जब कोई मेरे पूरे विचार पर सोचने बैठेगा, तो उसे तीन हिस्सों में तोड़ देना पड़ेगा। और तीनों के बीच बड़े विरोध होंगे। होना ही चाहिये, क्योंकि तीन अलग गुणों के माध्यम से वे बातें प्रकट हुई हैं। और तीनों के बीच संगति असम्भव है। अगर मेरे व्यक्तित्व में संगति खोजनी हो तो वह चौथे में मिलेगी, वह जो गुणातीत है। इन तीनों में संगति नहीं मिल सकेगी, इन तीनों के पीछे जो छिपा साक्षीभाव है, उसमें ही संगति मिलेगी।

□ संकलन : *मा योग तारा*
बम्बई

तुलसी मानस प्रकाशन

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३–००
२. ज्ञान साधना : २–००
३. विज्ञान से ज्ञान : १–००
४. वेदान्त-नवनीत : २–००
५. वेदान्त का सरल बोध : २–००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४–००
७. आध्यात्मिक डायरी १९७३ ७–५०
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंग्लिश) पाकेट बुक ६–००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद उपन्यास) ५–००
१०. मन की शांति (पद्य) : अंग्रेजी 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ४–००
११. हमारी परंपरा : २–००
१२. आराम सुख शांति और आनंद : १–००
१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. अपनी ओर इशारा : १–००
१५. व्यवहारिक जीवन और परमात्मा : १–००
१६. श्मशान यात्रा : १–००
१७. मेरे १०८ गुरु : ३–००
१८. सजगता : १–००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २–००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन: २–००
२१. चिंता और निश्चिंतता : २–००
२२. मन के पार : विकट प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर : १–००
२३. घर-घर की समस्या : २–००
२४. पीस आफ माइन्ड : (अंग्रेजी में) ५–००
२५. क्वायटर मोमेन्ट्स : (अंग्रेजी में) : २–००
२६. मनन योग्य बातें : १–००
२७. उनके सान्निध्य में : २–००
२८. जाग रे जाग ४–००
२९. जाग्रत-जाग्रत : ०–५०
३०. आधुनिक वेदान्त : २–००
३१. आंखों देखी २–००
३२. बात-बात में बात (आध्यात्मिक उपन्यास) ३–००
३३. अध्यात्म–नवनीत २–००
३४. साधना शिविर ३–००
३५. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक वार्षिक शुल्क : ५–००

ग्राहक एवं एजेन्ट्स एवं पुस्तक विक्रेता पत्र-व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी
गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

युक्रान्द

जिसकी लोकप्रियता अपनी निष्ठा और त्यागपूर्ण
सेवाओं के कारण भारत के महानगरों, नगरों
और गांवों-गांवों में निरंतर पिछले पांच
वर्षों से बढ़ती जा रही है ।

आप भी आज ही अपनी सदस्यता अथवा विज्ञापन हेतु सम्पर्क करें :

वार्षिक शुल्क १२ रु०
एक प्रति : १ रु०

विज्ञापन की दरें (प्रति अंक)
भीतर का पूरा पृष्ठ ५० रु०
कवर अंतिम पृष्ठ २०० रु०
कवर द्वितीय पृष्ठ १५० रु०
कवर तृतीय पृष्ठ १०० रु०

○ एजेंसी हेतु एवं सदस्यता हेतु संपर्क : संपादक— 'यु क्रां द'
७९०, राइट-टाउन, जबलपुर (म. प्र.) □ फोन : २९५७ पी० पी०

• सूचना •

अप्रैल का माऊंट आबू शिविर स्थगित किया गया है ।

आगे भगवान श्री के मार्ग-निर्देशन में जून के बाद शिविर होगा । कृपया स्थान, तिथि एवं विषय हेतु प्रतीक्षा करें ।

जीवन जागृति केन्द्र
भवानी चेम्बर्स, आश्रम रोड,
अहमदाबाद—९
फोन : ७७५७३